कुरुक्षेत्र

सितम्बर 1974

मूल्य : 50 पैसे

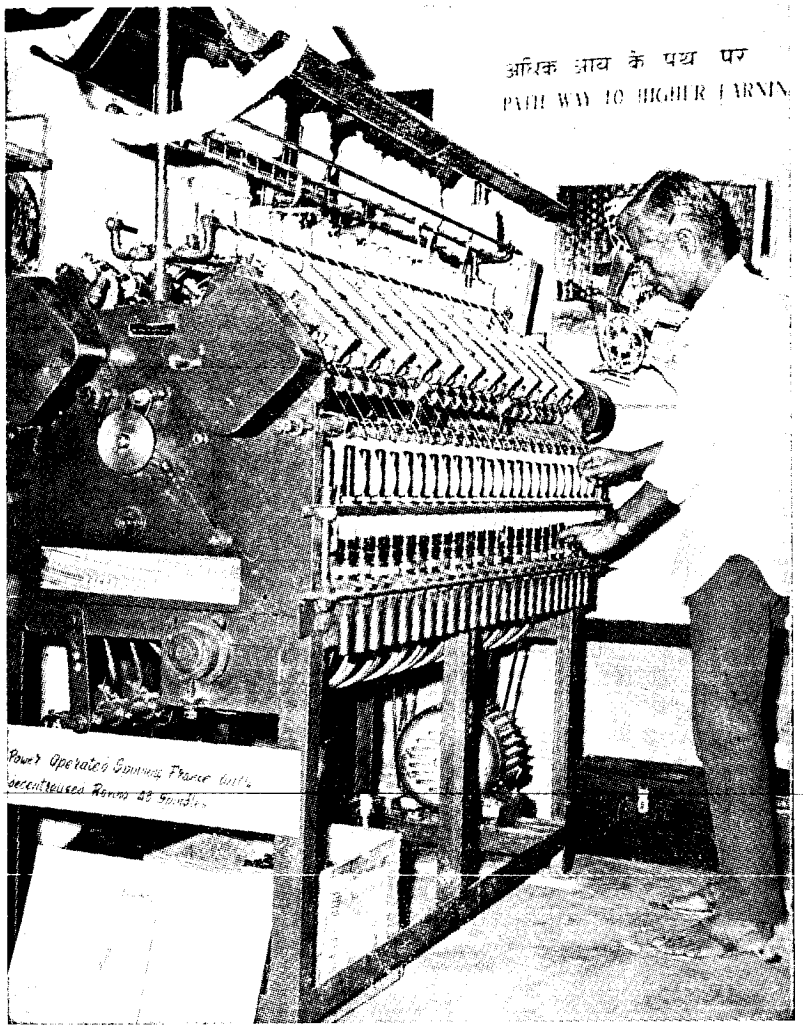

देश के अर्थतन्त्र को सशक्त बनाने के लिए खादी कार्यक्रम

दीनानाथ दुबे

खादी के नाम पर आज देश में कितनी उहापोह की स्थिति है, इसे देखकर मनमें एक करुणा आ जाती है। यह स्थिति उस बाल विधवा की भांति है जिसका कोई कसूर नहीं फिर भी वह सामाजिक तिरस्कार मात्र बन गई है ठीक वही स्थिति खादी की है। खादी मात्र एक कपड़ा है जिसके पीछे न केवल एक भव्य और गौरवास्पद अतीत है वरन् व्यावहारिक उत्पादन और स्वावलम्बन का अनुभवजन्य अर्थशास्त्र है। किसी जमाने में खादी पहनने वाले को आदर व श्रद्धा से देखा जाता था और खादी आजादी की पोशाक समझी जाती थी। पर, आज खादी भ्रष्टाचार की प्रतीक मान ली गई है। लोगों की शिकायत है कि इसका आधार सरकारी अंनुदान पर आश्रित है। पर, हमने क्या कभी इस तथ्य का मूल्यांकन करने की कोशिश की है कि जितनी मात्रा में खादी में सरकारी अनुदान लगा है वह आयोजन में लगे कुल निवेश का शायद एक प्रतिशत से कुछ अधिक हो ? पर इससे जो लाभ पहुंचा है वह करोड़ों अरबों रुपयों की लागत से खड़े किए गए कारखानों की तुलना में कहीं अधिक है। जब सरकार बीमार मिलों को लेकर उनके संचालन के लिए कृतसंकल्प है तो उसे खादी के कार्यक्रम के लिए भी वित्त की व्यवस्था करनी होगी। क्योंकि इसका सम्बन्ध ग्रामीण अर्थ व्यवस्था और उन करोड़ों लोगों से जुड़ा है जिन के लिए जिन्दगी मौत से भी अधिक दुःखदायी है।

खादी के कार्यक्रम की आलोचना कोई नई नहीं है। कुछ लोगों का पहले यह सवाल उठता था कि किसी दल विशेष के सदस्यों के लिए खादी पहनना अनिवार्य हो तो उसका प्रभाव सार्वजनिक कोष पर क्यों पड़ना चाहिए। कुछ लोग इसे प्रतिक्रियावादी कार्यक्रम, राकेट युग में बैलगाड़ी वाली अर्थव्यवस्था आदि नाम देते हैं। यही नहीं हमने इतिहास के उन पृष्ठों को नहीं देखा जबकि हाथ से कते और बुने वस्त्र ही हमारी कृषि औद्योगिक अर्थव्यवस्था का सशक्त आधार थे और उनके नष्ट भ्रष्ट करने पर ही ब्रिटेन का सूती कपड़ा उद्योग पनपा। 1850 में कार्ल-मार्क्स ने ठीक ही लिखा—'करघा और चरखा लाखों कतैयों और बुनकरों को रोजी देते हैं, और भारतीय समाज के तो ये मुख्य आधार थे।' अंग्रेजों ने भारतीय करघे को तोड़ दिया और चरखे को नष्ट कर दिया। इंग्लैण्ड ने भारतीय सूती कपड़े का यूरोप के बाजारों से बहिष्कार कर दिया और अपना माल भारत में भेजना शुरू कर दिया। इंग्लैंड के किसान और वाष्प शक्ति ने समूचे भारत के उस सन्तुलन को नष्ट कर दिया जो खेती और उद्योग के बीच विद्यमान था।

[शेष आवरण IV पर

मज़दूर मंज़िल

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, चित्र, फोटो आदि भेजिए। भाषा सरल हो और रचना का आकार 'कुरुक्षेत्र' के दो ढाई पृष्ठ से अधिक न हो।

●

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

●

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने या पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत बिजनेस मैनेजर, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1 से कीजिए।

●

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक 'कुरुक्षेत्र' (हिन्दी), कृषि मन्त्रालय, 467 कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

दूरभाष : 382406

एक प्रति 50 पैसे ● वार्षिक चन्दा 5.00 रुपए

सम्पादक :
पी० श्रीनिवासन

स० सम्पादक :
महेन्द्रपाल सिंह

उप सम्पादक :
त्रिलोकीनाथ

कुरुक्षेत्र

वर्ष 19 भाद्रपद 1896 **अंक 11**

इस अंक में

देश के अर्थतन्त्र को सशक्त बनाने के लिए खादी कार्यक्रम — आवरण II
दीनानाथ दुबे

अहरी गांव : एक सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण — आवरण III
शशि प्रभाकर चावला

आज का छात्रवर्ग : एक समस्या — 3
डा० प्रताप नारायण उपाध्याय

ये मौत के सौदागर — 6
योगेश चन्द्र शर्मा

सहकारी समितियों के प्रमुख कार्य — 9
ए० पी० शिन्दे

कमाण्ड क्षेत्रों का विकास — 10
हित प्रकाश

विदेशों में हिन्दी — 12
बच्चू प्रसाद सिंह

जागो ! अब भारत मां के लाल (कविता) — 13
मदन विरक्त

प्रोटीन की कमी की समस्या : एक समाधान — 14
डा० कमलाकान्त हीरक

रोटी के जाल में — 16
नरेन्द्र भट्ट

चलो ग्राम की ओर — 18
कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

भारत में परिवार नियोजन के आधारभूत सिद्धान्त — 19
डा० कर्ण सिंह

दहेज की प्रथा : एक अभिशाप — 21
शशि वोहरा

साहित्य समीक्षा — 25
ब्रजलाल उनियाल, सुभाष चन्द्र शर्मा, सूर्यदत्त दुबे, विश्वभूषण कृष्ण

ओढ़ा हुआ दुख (कहानी) — 27
बल्लभ डोभाल

पहला सुख निरोगी काया — 29
डा० युद्धवीर सिंह, राजवैद्य श्रीधर शर्मा

पाठकों की राय — 31
दुर्गाशंकर त्रिवेदी

हिन्दी के लिए बैंक ऋण — 36
बलराज मेहता

देश की युवाशक्ति किधर ?

गत 9 अगस्त को दिल्ली में बोट क्लब के पास देश के युवकों को सम्बोधित करते हुए श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने कहा था कि देश के युवकों पर मेरा पूर्ण विश्वास है और भरोसा है कि वे देश के सम्मुख चुनौतियों से मुख न मोड़ेंगे और आज हमारे समाज में नफाखोरी, चोरबाजारी, जमाखोरी मिलावट आदि जो बुराइयां विद्यमान हैं उनके उन्मूलन की दिशा में अपनी शक्तियों का उपयोग करेंगे। इसमें शक नहीं कि जिस तरह पृथ्वी की आशा बसन्त ऋतु पर निर्भर करती है उसी तरह किसी राष्ट्र की आशा उसके युवकों पर निर्भर करती है। सन् 42 के अगस्त आन्दोलन में हमारी युवाशक्ति ने जिस साहस, दृढ़ता और वीरता से ब्रिटिश साम्राज्यशाही के दमन और अत्याचारों का सामना करके देश को स्वतन्त्रता का नवप्रभात दिखाया वह अब इतिहास की एक अमर गाथा बन चुका है। युवाशक्ति का प्रवाह बड़ा तेज और अनियन्त्रित होता है और यदि उसे नियन्त्रित करके ठीक दिशा दे दी जाए तो वह राष्ट्र के विकास और पुनर्निर्माण के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है। पर, खेदहै कि आज हमारी युवाशक्ति अनियन्त्रित है और उसे ठीक दिशा नहीं मिल पा रही। नतीजा यह है कि आज हमारे छात्रों में अनुशासनहीनता, उच्छृखलता, छुरेबाजी, हुल्लड़बाजी, गुरुजनों के प्रति निरादर का भाव, छात्राओं के प्रति छेड़-छाड़, रिक्शा-तांगे व बस वालों से झगड़ा-झझट, तथा गाञ्जा-चरस और मदिरापान का बोलबला है। प्रगितशीलता के नाम पर और भी उनमें न जाने क्या-क्या जोशखरोश हैं। कुछ प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने उनमें अपने उपनिवेश कायम कर लिए हैं और वे उन्हें बहका-भटका-कर उनकी शक्तियों के शोषण से अपनी कुटिल योजनाओं का पोषण करती हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जहां हमने विकास का एक लम्बा रास्ता देखा है वहां हम ह्रास की एक लम्बी चौड़ी खाई में भी जा गिरे हैं। नफाखोरी, जामाखोरी, रिश्वतखोरी, चोरबाजारी, मिलावट, भ्रष्टाचार आदि बुराइयां हमारे समाज के अग अग में व्याप्त हो चुकी हैं। इस कलुषित वातावरण में आज हर व्यक्ति बेचैन है और अपने को परिस्थिति के अनुरूप ढालने में ही अपना कल्याण देखता है। यह बड़ी दयनीय स्थिति है और इससे उबरने के लिए हमें अपनी युवाशक्ति को जाग्रत करना ही होगा, अन्यथा कठिन ई से प्राप्त हमारी आजादी खतरे में पड़ जाएगी। राजनेता, समाज सुधारक, प्रशासक, प्रचारक आदि सभी का कर्त्तव्य है कि वे देश की युवाशक्ति को ठीक दिशा दें और हमें आशा है कि गत नौ अगस्त को छात्रों की रैली में श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने देश की युवाशक्ति को जाग्रत करने का जो शंखनाद किया उससे युवकों में हलचल पैदा होगी और परिणाम शुभ होगा।

महेन्द्रपाल सिंह

आज का छात्रवर्ग : एक समस्या

डा० प्रताप नारायण उपाध्याय

यह भी एक दैवदुर्विपाक एवं विधि की विडम्बना ही कहा जाएगा कि, जिस देश में नचिकेता, सत्यकाम, एकलव्य, गार्गी, मैत्रेयी आदि पौराणिक पात्रों, नित्यानन्द, पाणिनि, शीलभद्र आदि ऐतिहासिक पात्रों तथा तिलक, रानाडे, विद्यासागर आदि आधुनिक कालिक आदर्श छात्रों की दीर्घ परम्परा रही हो, उसी देश का आज का छात्र वर्ग समाज संचालकों के लिए समस्या बन जाए। आज के छात्र का क्रियाकलाप वस्तुतः उस स्थिति को पहुंच गया है, जिसकी उपेक्षा करना सम्पूर्ण देश का आत्मघात ही कहा जाएगा। परन्तु कोढ़ में खाज यह और है कि इस सम्पूर्ण स्थिति को खुली आंख से देख समझ कर भी सहा जा रहा है, अनदेखा किया जा रहा है। वर्तमान हीन दशा को देख कर भी भविष्य की ओर से आंखे बन्द हैं। राष्ट्र की भावी पीढ़ी नष्ट हो रही है। सम्पूर्ण देश ही नैतिक तथा आध्यात्मिक विनाश की ओर जा रहा है और हम उधर से बेखबर हैं।

आज का छात्र किसी भी प्रकार का अनुशासन, सामाजिक या नैतिक बन्धन स्वीकार नहीं करना चाहता। उसके जीवन से मर्यादा का लोप होकर उच्छृंखलता रोम-रोम में व्याप्त होती जा रही है। मजे की बात यह है कि इसमें उसे गर्व और गौरव की अनुभूति हो रही है, क्योंकि उसकी दृष्टि में यह प्रगतिशीलता है। जीवन में जरा भी नियम संयम का पालन किया अथवा अनुशासन में रहे कि प्रगतिशीलता समाप्त। यह स्थिति छोटे बड़े सभी छात्रों की है। हाई स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक के छात्र एक बड़ी ही विचित्र मनोवृत्ति से संचालित हो रहे हैं। गुरुजनों के प्रति उपेक्षाभाव, छात्राओं के प्रति कुचेष्टा और अभद्र व्यवहार, रिक्शा तांगे वाले, कुली, मजदूर, छोटे दुकानदार, छोटे दफ्तरों के क्लर्क आदि के साथ झगड़ा-झंझट, मारपीट, रेल-बसों में बिना टिकट यात्रा, मेले तमाशों में हुल्लड़ आदि उनका साधारण मनोरञ्जन है। ये प्रवृत्तियां ग्राम्य और नागरिक दोनों ही क्षेत्रों में पाई जाती हैं। नागरिक छात्रवर्ग में आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से कुछ अन्य बातें भी आ गई हैं। इन में मदिरा, चरस, गांजा, एल०एस०डी० आदि मादक द्रव्यों का खुला प्रयोग, आधुनिकता और प्रगतिशीलता के नाम पर खाद्याखाद्य का प्रयोग, जुआ, व्यभिचार आदि उनकी दैनिक सभ्यता का अनिवार्य अंग हैं। विद्यालय में उपस्थित न होने पर भी प्राध्यापक से उपस्थिति मांगना, इन्कार करने पर बाहर देख लेने की धमकी, परीक्षा में अनुचित साधनों का प्रयोग, रोके जाने पर चाकू छुरे का प्रदर्शन, परीक्षा के उपरान्त उत्तर पुस्तकों का पता लगाकर अंक बढ़वाने को पहुंच जाना और उसमें साम, दाम, दण्ड, भेद चारों उपायों का प्रयोग आदि उसके जीवन में सम्मिलित हो चुका है। विद्यालय क्षेत्र और उसके बाहर भी अवसर अनवसर पर उचित अनुचित आन्दोलन के लिए तत्परता, अनुचित मांग की स्वीकृति के लिए दुराग्रह आदि विशिष्ट प्रवृत्तियां हैं। अपराधी होने पर भी उनके साथी को दण्डित क्यों किया गया? उनके अवाञ्छनीय एवं अनधिकारी मित्र को छात्र संघ का पदाधिकारी क्यों न चुन जाने दिया गया? झूठी उपस्थिति क्यों नहीं दी गई? विशालयीय पुस्तकालय की पुस्तकें वापिस क्यों ले ली गईं? उनके इच्छानुसार साथियों को शुल्क मुक्ति क्यों न दी गई? ये तथा ऐसी ही अनेक मांगों को लेकर ये लोग दुराग्रह किया करते हैं। इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि शत प्रतिशत छात्र ऐसे नहीं होते। इन्हीं में अनेक संयमी, अनुशासित, मर्यादावादी, परिश्रमी तथा ईमानदार भी होते हैं। परन्तु इनका अनुपात बहुत ही थोड़ा होता है। बहुमत पूर्वोक्त प्रकार का ही होता है। अधिकांश में शील, संयम, चरित्र, सदाचार आदि मानवीय मूल्यों एवं उदात्त भावनाओं के लिए अनास्था एवं उपेक्षा ही पाई जाती है। यहीं पर यह विचित्र बात भी उल्लेखनीय है कि छात्रवर्ग की वह तेजी, प्रगतिशीलता, पराक्रम विद्यालयीय जीवन तक ही सीमित रहते हैं। ये छात्र ज्यों ही उस स्वप्निल संसार का परित्याग कर के यथार्थ के कठोर कर्मक्षेत्र में प्रवेश करते हैं, त्यों ही सारी हेकड़ी भूल कर छोटे से आदमी के सामने भी मिमियानी बकरी बन जाते हैं। विचित्र है आज के छात्र का वह मनोविज्ञान। यह स्थिति न्यूनाधिक रूप में सभी विद्यालयों की है। उन्नीस और इक्कीस का अन्तर पड़ सकता है।

समस्या का निदान

समस्या के स्वरूप पर संक्षेप में दृष्टिपात कर लेने के पश्चात् इसके निदान का भी विचार कर लिया जाए। छात्रवर्ग—चाहे ग्राम्य क्षेत्र का हो या नागरिक क्षेत्र का तथा छोटे विद्यालय का हो या महाविद्यालय और विश्वविद्यालय का—को निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहला वर्ग उन छात्रों का होता है, जो सच्चे जिज्ञासु और ज्ञानार्थी होते हैं। उन्हें इधर-उधर के प्रपञ्चों से प्रयोजन अधिक नहीं होता। वे जीवन की महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर ज्ञान की एकान्त साधना किया करते हैं। इनमें कुछ सम्पन्न एवं शिक्षित परिवारों से आते हैं, कुछ निर्धन और अशिक्षित परिवारों से परन्तु मानसिक गठन किसी सुसंस्कारवश लगभग उन्नतिकामी तथा ज्ञाननिष्ठ बन जाता है। यह वर्ग निष्ठापूर्वक अपनी लक्ष्यसिद्धि में दत्तचित्त रहता है। उसी वर्ग

से उच्चकोटि के विद्वान, प्रशासक, वकील, चिकित्सक, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि निकला करते हैं। सड़क छाप नेता, अभिनेता और विधायकों को यह वर्ग नहीं निकाल पाता। परिणाम में यह वर्ग बहुत छोटा होता है।

दूसरा वर्ग उन छात्रों का होता है, जो विद्याभिलाषा और महत्वाकांक्षा से प्रेरित होते हुए भी यशोलिप्सा से संचालित होते हैं। इस वर्ग के लिए ज्ञानार्जन गौण होता है, और बाह्य क्रिया कलाप सभा समितियों की स्थापना, संचालन, आन्दोलन, नेतृत्व आदि—प्रधान। इस वर्ग का समस्त कार्य व्यापार उसी बिन्दु के आस-पास घूमता है कि मैं अपने वर्ग में विशिष्ट स्थान और सम्मान का पात्र कैसे बनूं? प्राचार्य, प्राध्यापक, सहाध्यायी आदि सभी की दृष्टि में कैसे चढ़ूं? यही कारण है कि समस्त छात्र-मण्डल का नेतृत्व इसी वर्ग के हाथ में रहता है। यह वर्ग भी अपने समय, श्रम, निष्ठा का बलिदान करके अपने दायित्व का आग्रहपूर्वक निर्वाह करता है। इस वर्ग के अधिकांश छात्र मध्यम-वर्गीय परिवारों से आते हैं। ये छात्र आर्थिक साधनों से पूर्ण सम्पन्न न होते हुए भी अपनी व्यवहार बुद्धि और कार्य-कुशलता के बल पर अपने धनी और निर्धन सभी सहाध्यायिओं पर प्रभुत्व स्थापित किए रहते हैं। यह वर्ग परिणाम में प्रथम से बड़ा तथा तृतीय से निश्चय ही छोटा होता है।

तृतीय वर्ग उन छात्रों का होता है, जो समययापी होते हैं। इनकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं, जीवन का कोई विशिष्ट लक्ष्य नहीं। येन केन प्रकारेण पिता से प्राप्त धन का सत् या असत् व्यय करते हुए जीवन का आनन्द लूटना ही इनका प्रधान लक्ष्य होता है। विद्या में रुचि नहीं, समाज और देश से प्रयोजन नहीं। परन्तु यदि कोई धूर्त चालाक व्यक्ति या दल इन्हें अपनी वाचा में बांध कर इनके कान में मन्त्र फूंक दे कि, "चढ़ जा बेटा सूली पर भली करेंगे राम" तो तुरन्त उसके संकेतों पर नाचते हुए अपने विद्यालय की खिड़कियां, दरवाजे, शीशे तोड़ने और फर्नीचर जलाने लगेंगे। बसें फूंकने लगेंगे, रेल की पटरियां उखाड़ने में भी संकोच न करेंगे। जुलूस के आगे गला फाड़ नारे लगाते हुए पृथ्वी को आकाश पर पहुंचा देंगे। पुलिस अथवा शिक्षाधिकारियों के रोकने पर गुरिल्ला युद्ध का सफल प्रदर्शन करने में इन्हें देर न लगेगी। इनमें अधिकांश सम्पन्न और भरे पूरे परिवारों वाले होते हैं। अतः जीवन का आनन्द लूटना ही इनका कार्य होता है। पढ़ाई लिखाई से जरा दूर का ही सम्बन्ध रखते हैं। अच्छा खाना, पहनना, छात्राओं से मित्रता, होटल रेस्तराओं में चायपान, गप्प-शड़ाके, सिनेमा, कैबरे-नृत्य दर्शन इनकी दिनचर्या होती है। इन का मानसिक गठन इस प्रकार का हो जाता है कि उसमें अच्छाई प्रवेश देर में कर पाती है और बुराई अति शीघ्र। संस्कार दूषित और असंस्कृत रहते हैं, विचार अपरिपक्व' कोई भी वाचाल व्यक्ति थोड़ी सी चतुरता से इन्हें भड़का सकता है।

इस प्रकार की दुर्बलता और अपरिपक्वता के अनेक कारण हैं। पहला कारण है, छोटे विद्यालयों का वातावरण, जहां से कि वे उल्टे सीधे संस्कार लेकर आ रहे हैं। इन प्रारम्भिक शालाओं की स्थिति इतनी दयनीय होती है कि आश्चर्य होता है। अल्प वेतन के कारण अशिक्षित, असंस्कृत अध्यापक, साज सामान का भीषण अभाव, उस पर भी अध्यापक की छात्रों के प्रति अकर्मण्यता, पूर्व उपेक्षा, सामाजिक वातावरण का दूषित प्रभाव, इन सब के मिश्रित प्रभाव से शैशवकालीन संस्कार बनते हैं। प्रारम्भिक शिक्षा पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए, परन्तु सर्वाधिक उपेक्षित वही है। इस स्थिति में मानवीय उदात्त आदर्शों और महान् मूल्यों के बीजारोपण की आशा करना कल्पना मात्र है। अतः मूल संस्कार दूषित रह जाते हैं।

इसके अतिरिक्त एक मनोवैज्ञानिक कारण और होता है। छोटी कक्षाओं के पश्चात् जब छात्र महाविद्यालय में आता है, तो उनके सामने एक नया चमकीला क्षेत्र होता है। कहां वह संकुचित और सीमित, उस पर भी अध्यापक का कठोर नियन्त्रण, खुलकर खेलने का अनवकाश। अब यहां सब व्यापक और विस्तीर्ण, उन्मुक्त वातावरण, स्वच्छन्द बिहार। इसके साथ ही शारीरिक-मानसिक विकास, नई कल्पनाएं, नई आशा-आकांक्षाएं और उनकी पूर्ति के नए साधन। सभी कुछ सुन्दर और रंगीन। अतः उसमें पूर्व घुटन की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्साह, प्रसन्नता तथा जीवनीशक्ति का स्रोत फूट पड़ता है। कुछ कर दिखाने की आदम्य आकांक्षा जाग्रत हो जाती है। इस समय सन्मार्ग पर मोड़ दिया जाए, तो वह शक्ति वरदान बन सकती है, अन्यथा अभिशाप बनना स्वाभाविक है। यही हो रहा है। महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में भी सत्प्रवृत्तियों की ओर मोड़ने के उचित साधन और वातावरण का अभाव है।

तीसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है, वर्तमान सारहीन, खोखली शिक्षा पद्धति। इसमें सुधार के लिए न जाने कितने आयोग बैठे, वर्षों विचार के पश्चात् सैकड़ों हजारों पृष्ठों के प्रतिवेदन निकले। परन्तु सब कुछ अभी तक जहां का तहां है। कैसा आश्चर्य है। इसमें पुस्तकीय ज्ञान पर जोर देकर हस्तशिल्प और शारीरिक श्रम की अप्रतिष्ठा है। इस शिक्षापद्धति का अर्थोपार्जन से दूर का ही सम्बन्ध है। पूर्ण पारंगत हो जाने के बाद भी छात्र अपने उज्ज्वल भविष्य के प्रति पूर्ण आश्वस्त नहीं हो पाता। अन्धकार ही देखता है। यह भी मानसिक अराजकता का कारण है।

चौथा कारण है, विभिन्न राजनीतिक दलों का छात्रवर्ग में प्रभाव-विस्तार। प्रायः प्रत्येक राजनीतिक दल ने छात्रों में अपने-अपने उपनिवेश और जमीन्दारियां स्थापित कर रखी हैं। इन के द्वारा ये दल अपने-अपने सिद्धान्तों और वैचारिक साम्राज्यवाद का प्रचार-प्रसार किया करते हैं। विपक्षी दल को

आन्तकित करने, बदनाम करने, चुनाव में हराने आदि जघन्य कार्यों के लिए इस निरीह युवाशक्ति का ये दल शोषण और दोहन किया करते हैं। यह नीति क्या छात्रों में अनुशासन उत्पन्न करेगी ?

पांचवां कारण है, विद्यालय के अध्यापक मण्डल की पारस्परिक फूट, कलह, खींचतान। इससे भी छात्रवर्ग को दिग्भ्रमित किया जाता है। एक दूसरे की टांग घसीटने, नीचा दिखाने, प्रतिद्वन्द्वी के प्रभाव की स्थापना के लिए अध्यापक मण्डल भी इस भोली छात्र शक्ति का दुरुपयोग किया करता है। यह मोर्चा कभी प्राचार्य के विरुद्ध, कभी विभागाध्यक्ष और कभी प्रबन्धक के विरुद्ध जमाया जाता है। इन करतूतों से क्या संयम और अनुशासन उत्पन्न होंगे ?

छठे स्थान पर छात्रों की अपनी समस्याएं आती हैं। शुल्क मुक्ति, उपस्थिति, छात्र संघ के चुनाव, छात्रावास की अव्यवस्था, क्रीड़ा क्षेत्र की प्रतिस्पर्धा, प्राध्यापक का पक्षपात, जटिल प्रश्नपत्र, महिला मित्र का आकर्षण आदि। इन छह कारणों में से कोई एक अकेला कारण भी छात्रों के मस्तिष्क को विकृत करने के लिए पर्याप्त समर्थ है, फिर जहां सभी कारण एक साथ ही क्रियाशील हों, वहां इससे भिन्न परिणाम की आशा कैसे की जा सकती है ? सातवें कारण में भ्रष्टाचार, स्वार्थपरायणता, अनाचार आदि दूषित प्रवृत्तियों से विकृत समाज का विषैला प्रभाव भी अज्ञात रूप से छात्रों के मानसिक विनाश का उत्तरदायी है।

उपचार

स्पष्ट है कि इस विराट और भीषण समस्या के समाधान के लिए उपचार भी उतना ही विराट होना चाहिए। शासन और समाज दोनों एक साथ समन्वित प्रयत्नों से ही उपचार कर सकते हैं। न अकेला शासन कुछ कर सकता है और न अकेला समाज। इसके लिए एक बहुमुखी, सार्वदेशिक उपाय की आवश्यकता है। सर्वप्रथम आवश्यकता है, सुधार के प्रति उत्कट आकांक्षा और सुदृढ़ निष्ठा की। इसके बिना कोई भी उपाय कारगर नहीं हो सकता। परन्तु खेद है कि राष्ट्र की रीढ़ के समान महत्वपूर्ण यह समस्या चारों ओर से घोर उपेक्षित हो रही है। मूक दर्शक बने देख रहे हैं और पीढ़ी नष्ट हो रही है। उमड़ता हुआ पानी वक्ष को पार कर गले तक आ चुका है। इस समय यदि उचित उपचार न किए गए तो पानी मुंह में भरना प्रारम्भ हो जाएगा। इस सुधार के लिए निम्न उपाय अनिवार्य हैं।

कक्षा पद्धति में सुधार :—शिक्षा के मुख्य चार अंग होते हैं। शिक्षक, शिष्य, (छात्र) शिक्षणीय विषय और शिक्षा शैली। इन चारों में ही पर्याप्त सुधार और क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है। यह परिवर्तन प्रारम्भिक कक्षाओं से ही लागू करना होगा। त्याग, समर्पण, सेवाभावी वृत्ति के कष्ट सहिष्णु साथ ही बहुत अच्छा वेतन पाने वाले शिक्षक होने चाहिए। ये पूर्ण शिक्षित और सुसंस्कृत तथा समाज में सम्मानित होने चाहिए। शिक्षणीय विषयों में हस्तशिल्प और पर्याप्त श्रम का भी समावेश आवश्यक है। साथ ही शिक्षा में ऐसे तत्व मिश्रित किए जाएं, जिनसे कि शील, संयम, अनुशासन, मर्यादा आदि उदात्त वृत्तियों का बीजारोपण हो सके। औद्योगिक हस्तशिल्प के द्वारा माध्यमिक कक्षाओं के बाद ही छात्र को स्वावलम्बी बना कर उसे अपने उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त करते हुए श्रमपरायण तथा श्रम की प्रतिष्ठा करने वाला बना सकते हैं। इस प्रकार छात्र के मानसिक असन्तोष और उपद्रववृति की जड़ पर ही भयंकर आघात होगा और अनुशासन की दिशा में एक कदम बढ़ेगा।

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन यह होना चाहिए कि उच्च शिक्षा केवल विशिष्ट बौद्धिक शक्ति से सम्पन्न प्रतिभाशाली छात्रों के लिए ही सुरक्षित होनी चाहिए। ऐरे गैरे नत्थू खैरे को उच्च शिक्षा के प्रलोभन से बचाने में पूर्वोक्त औद्योगिक हस्तशिल्पीय शिक्षा तो सफल उपाय होगी ही, साथ ही राजकीय सेवा में प्रवेश के लिए उपाधि (डिग्री) के बन्धन को भी समाप्त करना होगा। इसी प्रकार महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में भी कोरी उपाधि को महत्व न देकर ठोस ज्ञान को प्रश्रय देना चाहिए। उदाहरण है बनारस विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग, जहां कि पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय एम०ए० कक्षाओं को पढ़ाते थे और केवल हिन्दी-उर्दू मिडिल पास थे। इन का ज्ञान आज के किसी भी डी० लिट् से कम था क्या ? आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इन्टर पास थे। आज का कोई भी हिन्दी विभागाध्यक्ष क्या उनकी बौद्धिक क्षमता और ज्ञान गरिमा को पा सकता है ? बाबू श्यामसुन्दर दास जी केवल बी०ए० थे। यही परम्परा सर्वत्र जब प्रचलित होगी, तभी उच्च उपाधि की ललक कम हो सकेगी। तभी यथार्थ जिज्ञासु और ज्ञानार्थी ही महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में प्रवेश लिया करेंगे। अनधिकारियों के न होने से समस्या स्वयं समाहित होने लगेगी।

शिक्षा सुधार के बाद दूसरा आवश्यक कार्य होना चाहिए, राजनीतिक दलों के प्रभाव की समाप्ति। बिना उसके शिक्षा का सुधार भी व्यर्थ हो जाएगा। यह एक निर्णीत तथ्य है कि छात्रों के उपद्रव और अनुशासनहीनता के मूल में बहुत बड़ा कारण यही राजनीतिक दल हैं। जब देश गुलाम था तब तो सभी देशवासियों का कर्त्तव्य था कि वे स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अपना-अपना योग दें। छात्रों ने भी उस समय हर आन्दोलन में भाग लेकर सराहनीय कार्य किया पर अब निर्माण का समय है और छात्रों को मानव समाज के कल्याण के महत् उद्देश्य को लेकर निर्माण और विकास के कार्यों में अपना योग देना चाहिए न कि विनाश के कार्यों में।

इसके अतिरिक्त छात्रों को उचित और वास्तविक समस्याओं के समाधान के प्रति एक सतर्क और क्रियाशील दृष्टिकोण होना चाहिए, जिसमें यथार्थवादी दृष्टि का योग रहे। यह 20वीं सदी का तर्क प्रधान बुद्धिवादी युग है। तदनुरूप ही उसकी समस्याएं हैं और तदनुरूप ही उनके समाधान भी होने चाहिए।

इसी वर्ष अप्रल में कानपुर के लाला लाजपतराय अस्पताल में एक भयंकर दुर्घटना घटी जिसने समस्त देश को हिला दिया। शल्य क्रिया के बाद गम्भीर स्थिति या बेहोशी की हालत में रोगियों के शरीर में वांछित क्षमता बनाए रखने के लिए और उसे ऊर्जा प्रदान करने के लिए अक्सर ग्लूकोज दिया जाता है। इस अस्पताल में भी 12 अप्रैल को 20 रोगियों को ग्लूकोज दिया गया। सोचा जा रहा था कि मरीज इससे स्वास्थ्य लाभ कर सकेंगे। मरीजों के परिजन बड़ी आशा भरी दृष्टि से जीवनदायी ग्लूकोज की बोतल को निहार रहे थे। मगर यही ग्लूकोज जब मरीज के शरीर में गया तो उसने विष का काम किया। तेरह व्यक्ति तत्काल मर गए। कुछ बाद में सघर्ष करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए। कुछ पहले भी इसके शिकार हो चुके थे। पता चला ग्लूकोज की बोतल में मिलावट थी। मिलावट वाला यह ग्लूकोज लगभग बाईस से अधिक व्यक्तियों के प्राण ले चुका है।

प्रकार की एक दवाई ने पचास बच्चों की जान ले ली। उन्हें जो दवाई दी गई थी उसमे चूहों को मारने वाली दवाई मिली हुई थी। शाहपुर (गुजरात) में पुलिस की गोली से घायल एक व्यक्ति को ग्लूकोज देने से उसकी मृत्यु हो गई। पता चला ग्लूकोज में मिट्टी का तेल मिला हुआ था। कानपुर के एक धर्मार्थ अस्पताल में ढाई वर्ष की एक बालिका को दो डाक्टरों की उपस्थिति में जीवन-रक्षक दवा डाईक्रिस्टसिन का इंजेक्शन लगाया गया। मगर इस जीवनरक्षक दवा ने उस बालिका के प्राण ले लिए। कारण था वही दवाई में मिलावट। हाल में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार हमारे देश में विभिन्न बीमारियों से जितने व्यक्तियों की मृत्यु होती है, उनमें से पचास प्रतिशत रोगियों की मृत्यु का कारण मिलावटी या नकली दवाइयां ही होती हैं। केन्द्रीय श्रम उपमन्त्री श्री बाल गोविन्द शर्मा की अध्यक्षता में भारतीय उपभोक्ता परिषद ने जो सर्वेक्षण किया, उसके अनुसार बेईमान व्यक्ति

में चर्बी, नमक में खड़िया मिट्टी, पिसी हुई लाल मिर्च में रंगा हुआ लकड़ी का बुरादा, केसर में रंगे हुए भुट्टे के बाल और दूध के ऊपर जमी हुइ मलाई के अन्दर अरारोट या ब्लाटिंग पेपर के टुकड़े जैसे उदाहरण तो अब मिलावट की चर्चा में काफी पुराने उदाहरण हो गए। कलकत्ता के एक चावल मिल मालिक ने विदेश से ऐसे कंकड़ों को आयात करने की भी असफल कोशिश की जो चावल के जैसे आकार प्रकार के थे। स्पष्ट ही उसका उद्देश्य इन कंकड़ों को चावल में मिलाकर बेचने का था। खाद्य वस्तुओं में कुछ मिलावटें अत्यन्त हानिकारक होती हैं, जिनके बारे में अनेक घटनाएं हमें समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलती हैं। हल्दी में लेड़क्रोमेट नाम का पदार्थ मिलाने से रक्ताल्पता तथा पक्षाघात का खतरा रहता है। खाद्य तेलों में मशीन का तेल मिलाने से कैंसर तक की बीमारी हो सकती है। मिठाइयों में डाले गए रंग अनेक प्रकार की बीमारियों के कारण बन जाते हैं। मिठाइयों

ये मौत के सौदागर

योगेश चन्द्र शर्मा

मिलावटी दवाइयों के कारण होने वाली मृत्यु की घटनाएं हमारे देश में इससे पहले भी अनेक बार घट चुकी हैं। सामान्यतः उपलब्ध होने वाली मिलावटी वस्तुओं के उपभोग से मनुष्य जब अस्वस्थ हो जाता है तो वह आशा भरा हृदय लेकर चिकित्सक के पास जाता है और उसकी पर्ची से औषध विक्रेता के यहां से खूबसूरत पैकिंग वाली कीमती दवाइयां लेकर घर लौटता है। अब उस खूबसूरत पैकिंग के अन्दर वास्तव में औषध है या उसके लिए कोई प्राण लेवा वस्तु, इसकी उसे जानकारी नहीं होती। मिलावट वाली औषधि रोग के स्थान पर स्वयं रोगी को ही समाप्त कर डालती है। मोगा (पंजाब) में इसी काम में आई दवाइयों के पुराने डिब्बे बाजार से बटोर लेते हैं और उनमें नकली दवाइयां भरकर अपेक्षाकृत सस्ते मूल्य पर उन्हें थोक व्यापारियों को बेच देते हैं। इस तरह धन के लोभ मे आकर बड़े छोटे व्यापारी भी मौत की इस सौदेबाजी में शामिल हो जाते हैं।

खाद्य पदार्थों मे मिलावट की चर्चा तो अब काफी पुरानी पड़ चुकी है। लगता है जैसे मनुष्य अब इन मिलावट वाली वस्तुओं को खाने के आदी बन चुके हैं। दूध में पानी, हल्दी मे पीली मिट्टी, धनिए मे घोड़े की लीद, काली मिर्च में पपीते के बीज, लाल मिर्च में पिसी ईंट का चूरा, उड़द की डाल में रंगे हुए काले कंकड़, मक्खन और घी पर लगाया गया चांदी जैसा वर्क इस प्रकार के घातक तत्व से बनाया जाता है कि उससे आन्त्रशोथ जैसी घातक बीमारियां भी हो सकती हैं। इस प्रकार की घातक वस्तुओं की खाद्य पदार्थों में मिलावट मौत के ये सौदागर अक्सर करते हैं। कुछ समय पूर्व सरसों के मिलावटी तेल के प्रयोग से लगभग चार सौ लोगों को लकवा मार गया था। मिलावटी और जहरीली शराब पीने से मरने वालों की खबरें अक्सर ही समाचार पत्रों में छपती रहती हैं। नागपुर मे मिलावटी खाद्य पदार्थों के कारण अनेक व्यक्ति अस्वस्थ हो गए। उदयपुर में मिलावटी वनस्पति घी के प्रयोग से लगभग दो सौ व्यक्ति बीमार हो गए।

भारतीय उपभोक्ता परिषद् के सर्वेक्षण के अनुसार 1973 में मिलावटी खाद्य पदार्थों के उपयोग से 4,087 व्यक्ति रोग-ग्रस्त हुए। इनमें से 1,050 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। इस वर्ष मृत्यु की ये घटनाएं सबसे अधिक पश्चिम बंगाल में हुई। इसके बाद क्रमशः उड़ीसा, जम्मू कश्मीर, उत्तर प्रदेश और बिहार थे। राजस्थान में भी मिलावटी वस्तुओं के अनेक मामले प्रकाश में आए। इस संख्या की तुलना में मिलावटी खाद्य पदार्थों के शिकार व्यक्तियों की संख्या 1972 में केवल 683 थी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि खाद्य वस्तुओं की मिलावट में हम निरन्तर आगे बढ़ रहे हैं। वैसे यह भी स्पष्ट है कि ये आंकड़े सही नहीं हो सकते। क्योंकि मिलावट सम्बन्धी अनेक मामले प्रकाश में नहीं आ पाते और उनकी कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं होती। सर्वेक्षणों के अनुसार देश में खाद्य पदार्थों में साठ प्रतिशत तक और कहीं कहीं इससे भी अधिक मिलावट होती है। वैसे व्यावहारिक अनुभव यह है कि आज के युग में शायद ही कोई ऐसा खाद्य पदार्थ हो जो शुद्ध रूप में बाजार में उपलब्ध हो सके।

अब मिलावट का यह संक्रामक रोग अब दवाइयों तक जा पहुंचा है तो स्थिति और भी अधिक गम्भीर हो गई है। हमारे यहां औसत परिवार प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति दवाइयों पर पांच रुपए से अधिक खर्च करने की स्थिति में नहीं है। अतएव स्वभावतः वह दवाई तब खरीदता है जब रोग मुक्ति के लिए वह आवश्यक हो। मगर दुर्भाग्य से उसे तब भी सही दवाई नहीं मिल पाती। रोग से त्राण प्राप्त करने के लिए वह जिस दवाई की शरण जाता है वह अक्सर निरर्थक ही सिद्ध होती है, बल्कि कभी-कभी प्राणघातक भी। कुछ समय पूर्व भारतीय उपभोक्ता परिषद् ने जब कुछ औषधि विक्रेताओं के यहां अचानक छापा मारा तो असली दवाइयों के समान ही उन्हीं के रूप में अनेक नकली और विनाशकारक दवाइयों को बिकते देखा। असली 'एस्प्रो' के समान नकली 'एस्प्रो' का लेबल बनाया गया था। उस नकली 'एस्प्रो' में प्राप्त पदार्थ इतना घातक था कि अगर कोई व्यक्ति उसकी छह गोलियां एक साथ ले ले तो उसकी मृत्यु तक हो सकती है। मल्टी विटामिन की गोलियों में चाक का चूरा पाया गया, जिससे स्वास्थ्य बनना तो दूर पेचिश और पथरी होने की आशंका रहती है। एस्पिरिन और ए.पी.सी. की गोलियो में सिर्फ चाक का चूरा मिला। 'सेरिडोन' के नाम का फायदा उठाने के उद्देश्य से 'सोरोडीन' नाम की दवाई बाजार में बेची जाती पकड़ी गई, जिससे सिर दर्द दूर होने के स्थान पर पेट दर्द पैदा हो जाता है। 'कोडोपायरिन' के नाम पर बाजार में 'कोडोपीन' बिकती पाई गई, जिसमें एस्पिरिन और चाक का चूरा मात्र था।

मिलावट सम्बन्धी विभिन्न सर्वेक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि केवल एल्योपैथी में ही नहीं, बल्कि यूनानी, वैद्यक तथा होम्योपैथी दवाइयों में भी काफी मिलावट की जाती है। दवाओं में इस मिलावट का चिकित्सकों पर यह मनावैज्ञानिक असर पड़ने लगा है कि अब वे किसी भी दवाई की सिफारिश करते समय बड़े शंकित रहते हैं कि वे कहीं मिलावट वाली दवाई तो नहीं दे रहे। बाजार में नित्य नई दवाइयां आती रहती हैं। इनमें से कौन-सी दवाई कितनी शुद्ध है, यह जान पाना एक साधारण चिकित्सक के लिए सम्भव नहीं। कुछ फर्में अपने पुराने लाइसेंसों के जब्त हो जाने के बाद नए नाम से स्थापित होकर नए लाईसेंस ले लेती हैं। ऐसी फर्मों को पहचान पाना और उनकी दवाइयों को अलग कर पाना बहुत मुश्किल है।

प्रश्न उठता है कि मिलावट में बढ़ती हुई इस वृद्धि का क्या कारण है? स्पष्ट ही प्रथम कारण तो औषधि निर्माता की अत्यधिक धनलोलुपता है। वह कम से कम खर्च करके अधिक से अधिक कमाना चाहता है। दूसरी बात यह है कि देश में अनैतिकता के बढ़ते हुए जाल ने अब औषधि व्यापार से सम्बन्धित व्यक्तियों, को भी अपने जाल में फांस लिया है। कहीं किसी के सामने नैतिक आदर्श जैसी कोई वस्तु लगती ही नहीं। ऐसा महसूस ही नहीं होता कि जिम्मेदार कार्य या व्यापार में लगे व्यक्तियों को अपने दायित्वों का कोई अहसास है। तीसरे, हमारे यहां ऐसी प्रयोगशालाएं बहुत कम हैं, जहां पर नकली औषधियों या अन्य वस्तुओं का परीक्षण किया जा सके। शुद्धता की जांच पड़ताल करने या उन पर निगरानी करने वाले अधिकारी भी अत्यन्त कम संख्या में हैं। दवाइयों के क्षेत्र में ही हमारे यहां लगभग 74,000 विक्रेता हैं तथा 2,400 लाइसेंसशुदा निर्माता। इन पर निरीक्षकों की संख्या केवल 200 है। फिर यह भी सत्य है कि वस्तुओं की शुद्धता की जांच करने वाले अन्य निरीक्षकों के समान ये निरीक्षक भी सामान्यतः अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक नहीं होते। चौथे, हमारे यहां मिलावट करने वाले अपराधियों के विरुद्ध कानूनी व्यवस्था भी अधिक मजबूत नहीं। सामान्यतः खाद्य वस्तुओं में मिलावट करने वाले अपराधियों के लिए कुछ माह के दण्ड की व्यवस्था है। औषधियों में मिलावट करने पर अधिक से अधिक दस वर्ष का कारावास है। व्यवहार में इतना दण्ड भी साधारणतः दिया नहीं जाता। 1972-73 में दवाइयों में मिलावट के सम्बन्ध में 24 अपराधियों के विरुद्ध मुकदमे दायर किए गए थे, मगर उन्हें केवल एक दिन से लेकर तीन महीने तक का ही कारावास मिला। स्पष्ट ही इतनी सी सजा मौत के इन सौदागरों के लिए कोई अर्थ नहीं रखती। कानूनी खींचतान अथवा अपने प्रभाव के कारण ये उस सजा से भी बच निकलते है जो कानून के अन्तर्गत इनके लिए व्यवस्थित की गई है। इसके विपरीत यदि हम सोबियत संघ का उदाहरण लें तो वहां पर मिलावट जसी अनैतिक बातों को बहुत गम्भीर अपराध माना जाता है। गत वर्ष ही वहां केवल फलों के रस में मिलावट करने से तीन व्यक्तियों को मृत्युदण्ड दिया गया और अन्य अनेक व्यक्तियों को लम्बी कैद की सजा। निश्चित ही दवाइयों में मिलावट

करना उससे कहीं अधिक भयंकर अपराध है। फिर जिस मिलावट से दर्जनों व्यक्तियों की मृत्यु हो जाए, क्या वह अपराध हत्या के अपराध से कम भयानक है ? फिर उसमें सजा केवल दस वर्ष की क्यों ? खाद्य पदार्थों में जिस मिलावट से व्यक्ति के प्राण चले जाएं या उन्हें भयंकर बीमारी हो जाए, वह कम भयंकर अपराध तो नहीं। फिर उसमें केवल कुछ माह की कैद क्यों ?

राजस्थान के कैमिस्ट्स एवं ड्रगिस्ट एसोसियशन ने हाल में यह आरोप लगाया था कि मिलावटी औषधियों के सबसे बड़े खरीदार चिकित्सालय ही होते हैं। एक सीमा तक आरोप सत्य भी है। अभी तक मिलावटी दवाओं की जो घटनाएं प्रकाश में आई, उनमें से अनेक घटनाएं अस्पताल के द्वारा खरीदी गई दवाओं की ही हैं। प्रश्न उठता है अस्पताल ऐसी लापरवाही क्यों करते हैं ? इस सम्बन्ध में जांच पड़ताल से दो उत्तर सामने आए हैं। प्रथम, स्थानीय निर्माताओं को प्रोत्साहन देने की भावना। इस भावना की सामान्यतः सराहना की जा सकती है। मगर औषधियों के बारे में इस भावना को अधिक महत्व देना गलत होगा। पहली आवश्यकता शुद्ध दवाई की प्राप्ति है। यदि स्थानीय निर्माता के उत्पादन के स्तर में तनिक भी शंका हो तो उसे न लेना ही ठीक है। दूसरे, अधिकांश औषधियां वित्तीय वर्ष के अन्त में खरीदी जाती हैं। तब, 31 मार्च से पहले ही बजट समाप्त करने की भावना अधिकारियों में रहती है। यह व्यवस्था उचित नहीं। औषधियों की खरीद काफी जांच पड़ताल के बाद ही होनी चाहिए और उसके लिए आवश्यक वित्तीय व्यवस्था समय से पूर्व ही कर देनी चाहिए।

मिलावट के अपराधियों को दण्ड देने की व्यवस्था में भी परिवर्तन आवश्यक है। पिछले वर्ष विधि आयोग ने सुझाव दिया था कि खाद्यान्नों में मिलावट की सजा को छह माह से बढ़ाकर तीन वर्ष कर दिया जाए। यह अवधि उन मामलों में तो उपयुक्त हो सकती है, जहां पर किसी ऐसी वस्तु में भी मिलावट की गई हो, जो मानव शरीर के लिए हानिकारक न हो। यदि किसी हानिकारक वस्तु की खाद्य पदार्थों में मिलावट की गई है तो वह व्यक्ति उतना ही अपराधी माना जाना चाहिए जितना अपराधी दवाइयों में मिलावट करने वाला है और ये दोनों प्रकार के अपराधी वैसे ही माने जाने चाहिएं जैसा किसी को घातक चोट पहुंचाने या हत्या करने वाला अपराधी होता है। स्वास्थ्य और परिवार नियोजन की संयुक्त समिति ने सुझाव दिया है कि खाद्य पदार्थों में मिलावट करने वाले व्यक्तियों को आजन्म कारावास की सजा दी जाए। अपराध की गुरुता को देखते हुए यह प्रस्ताव सचमुच ही प्रशंसनीय है। अभी यह प्रस्ताव सरकार के विचाराधीन है, मगर आशा है सरकार इस प्रस्ताव को कुछ संशोधनों के साथ स्वीकार कर लेगी।

यह भी आवश्यक है कि मिलावट सम्बन्धी कानूनों का निर्माण इस प्रकार हो कि उससे अपराधी के बच निकलने की कोई शंका न रहे। इन मुकदमों के फैसले में विलम्ब न हो और अपराधियों का नाम आदि समाज में पूरी तरह प्रचारित किए जाएं। गत वर्ष प्रधानमन्त्री ने भी इस सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए सुझाव दिया था कि मिलावट करने वाले व्यापारियों के नामों की सूचियां प्रकाशित करके उन्हें बाजारों में टांगा जाए। इस प्रकार की बातों का निश्चित ही अन्य व्यापारियों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

वस्तुओं की शुद्धता की जांच करने के लिए प्रयोगशालाओं की संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि होनी चाहिए। निरीक्षण से सम्बन्धित अधिकारियों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी होनी चाहिए। इससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि ये अधिकारी अपना कार्य पूरी ईमानदारी से करें। इसके लिए इन अधिकारियों पर कठोर नियन्त्रण आवश्यक है। यदि किसी भी अधिकारी के क्षेत्र में वस्तुओं की मिलावट पाई जाए तो उस अधिकारी को न केवल पदच्युत किया जाए, बल्कि उसे लगभग उतना ही दण्ड दिया जाए, जितना दण्ड मिलावट करने वाले अपराधी को दिया जाता है।

मसाले तथा इसी प्रकार की कुछ अन्य वस्तुओं की शुद्धता को निश्चित करने के लिए उन्हें प्रमाणित पैकिंग में ही बेचने के लिए कानूनी व्यवस्था की जा सकती है।

इन समस्त उपचारों को अपनाने के साथ यह भी आवश्यक है कि प्रशासन स्वयं मिलावट के सम्बन्ध में काफी कठोर रवैया अपनाए। इस वर्ष के प्रारम्भ में केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय ने दूध की शुद्धता का मानक 8.5 एस. एन. एफ. से घटाकर 8.3 एस. एन. एफ. कर दिया। स्पष्ट ही इस व्यवस्था से मिलावट को ही प्रोत्साहन मिलता है। अब, इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत दूध में 15 प्रतिशत तक पानी सरलता से और कानूनी रूप से मिलाया जा सकता है। 92 प्रतिशत शुद्धता वाला नमक भी अभी तक केवल पशुओं के लिए खाद्य समझा जाता था। अब वही नमक मनुष्यों के लिए उचित मान लिया गया है। प्रशासन को इस क्षेत्र में अधिक कठोरता का परिचय देना होगा, अन्यथा उसके लिए मौत के सौदागरों का सामना करना सरल न होगा।

देश की अधिकांश समस्याओं की जड़ में शिक्षा होती है। यहां भी स्थिति वही है। हमें अपने पाठ्यक्रम में व्यावहारिक आदर्श और नागरिक कर्त्तव्यों को अधिक महत्व देना चाहिए, ताकि देशवासियों को अपनी जिम्मेदारियों का अहसास हो सके और उनका नैतिक चरित्र ऊंचा उठ सके।

प्राध्यापक (राजनीति शास्त्र)
राजकीय कालेज, दौसा (राज०)

सहकारी समितियों के प्रमुख कार्य

कृषि क्षेत्र में सहकारी विकास का मुख्य कार्य कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी करना है। किसानों को, विशेषकर छोटे किसानों को, आधुनिक तकनीक की जानकारी देने तथा उन्हें आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध कराने में सहकारियों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

हाल के कुछ वर्षों में सहकारियों ने काफी प्रगति की है। उदाहरण के लिए, 1970-71 में 598 करोड़ रुपए के मध्यावधि और अल्पावधि ऋण बांटे गए थे जबकि 1972-73 में 685 करोड़ रुपए के ऋण बांटे गए थे। आशा है कि 1973-74 में 750 करोड़ रुपए के ऋण बांटे जाएंगे। सहकारियों ने कुल 850 करोड़ रुपए के दीर्घावधि ऋण वितरित किए जबकि निर्धारित लक्ष्य 900 करोड़ रुपए का था। सहकारी विपणन के सन्दर्भ में सहकारियों ने 1972-73 में 914 करोड़ रुपए के कृषि उत्पादन का विपणन किया और आशा है कि 1973-74 तक 1,000 करोड़ रुपए के उत्पादन का विपणन किया जा सकेगा। चौथी योजना में 900 करोड़ रुपय के मूल्य के उत्पादन के सहकारी विपणन का लक्ष्य था।

विकास की प्रक्रिया कुछ राज्यों तक सीमित रही है। कृषि विकास उन्हीं क्षेत्रों में अधिक हो पाया है जिनमें कृषि सहकारिता आन्दोलन शक्तिशाली था। यह मात्र संयोग नहीं है बल्कि इससे यह पता चलता है कि कृषि विकास और कृषि सहकारिता आन्दोलन एक दूसरे को मजबूत बनाते हैं। अतः कृषि विकास में तेजी लाने के लिए अन्य क्षेत्रों में भी सहकारियों का सघन विकास करना होगा। दूसरे, पिछले कुछ वर्षों में सहकारिता का तेजी से विकास हुआ है और उसी दौरान आन्दोलन की अनेक खामियां भी उभरकर सामने आई हैं। इन खामियों को भी दूर करना होगा।

आगामी खरीफ और रबी की फसलें अच्छी होने से वर्तमान अन्न संकट से राहत मिलने की आशा है। इसी उद्देश्य से आपात्कालीन स्तर पर कृषि विकास के प्रयास किए जा रहे हैं। इसके लिए सहकारिता के अन्तर्गत किए जाने वाले कार्यों को भी उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से ही क्रियान्वित किया जाएगा।

समस्याएं

अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए सहकारिता के चले आ रहे परम्परागत ढ़ांचे को बदलना होगा। विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न फसलों के अनुरूप ही सहकारिता के ढांचे को बनाना होगा। और पुरानी लीक से बन्धे रहने से काम नहीं चल पाएगा। असल उद्देश्य कमजोर वर्गों की अधिकाधिक सहायता करना होना चाहिए और इसी को मानकर योजना बनानी चाहिए। राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा सुझाई गई कृषक सेवा समिति का संगठन इस दिशा में एक प्रयोग है।

ए०पी० शिन्दे

अभी हाल में उर्वरक के मूल्यों में हुई वृद्धि को देखते हुए किसानों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता की सीमा बढ़ानी होगी। कृषि मन्त्रालय और रिजर्व बैंक तो इस दिशा में कार्य शुरू कर चुके हैं।

एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू की ओर मैं आप लोगों का ध्यान दिलाना चाहता हूं और वह यह है कि सहकारी समितियों द्वारा दिए गए ऋणों की रकमें वापिस नहीं दी जातीं। 30 जून, 1973 तक प्राथमिक कृषि ऋण सहकारी समितियों में 40 प्रतिशत ऋणों की नियमित वापसी नहीं हो पाई थी। इसके लिए, रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने एक अध्ययन दल भी नियुक्त किया था और उस दल की रिपोर्ट आपके सामने है।

सहकारी समितियों द्वारा खाद्यान्न के विपणन करने की प्रक्रिया का विकास करने पर अधिक ध्यान देना होगा ताकि ये समितियां वितरण प्रणाली का प्रमुख स्रोत बन सकें। सहकारियों के समेकित विकास की योजना के अन्तर्गत किसानों को ऋण और आदान आदि उपलब्ध कराने की सेवाओं में तालमेल कायम किया जाना चाहिए।

सरकारी क्षेत्र में खाद्य निगम, कपास निगम, पटसन निगम, आदि स्थापित किए गए हैं। इन निगमों के सामाजिक उद्देश्य वही हैं जो सहकारी समितियों के हैं। अतः नीति यही है कि ये निगम सहकारियों के कार्यों में सहायता करें और उन्हीं के माध्यम से कार्य करें। इनमें से कुछ निगम सहकारियों के समानान्तर काम कर रहे हैं और नतीजा यह है कि सहकारी समितियों के कामों की पुनरावृत्ति होती रहती है। इस सबका परिणाम होता है राष्ट्रीय संसाधनों का दुरुपयोग। इसके लिए आवश्यक है कि इन निगमों का पुनर्गठन किया जाए।

उर्वरकों की कीमतें बढ़ जाने के कारण अब सहकारी समितियों के सामने उर्वरकों का पर्याप्त स्टाक रखने के लिए बैंक से रुपया प्राप्त करने की समस्या आ गई है। बैंकों द्वारा दिए जाने वाले ऋणों में की गई कटौती का प्रश्न रिजर्व बैंक के सामने रखा गया था पर अब रिजर्व बैंक ने सहकारी बैंकों को उर्वरकों की खरीद के लिए ऋण देना फिर से शुरू कर दिया है। यह कृषि उत्पादन कार्यक्रम के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण है, अतः सम्मेलन को उर्वरक वितरण की व्यवस्था और ऋण आदि पर विचार करना चाहिए।

कमजोर वर्ग

सहकारी समितियों के सामाजिक उद्देश्यों के अन्तर्गत इन समितियों का लाभ कमजोर तबकों तक पहुंचाने पर भी विशेष जोर दिया जा रहा है। इसके लिए सहकारियों का काम दुहरा है। एक तो कमजोर वर्गों को अधिकाधिक

[शेष पृष्ठ 11 पर

कमाण्ड क्षेत्रों का विकास

हित प्रकाश

भारत में भूमि जल साधन बड़ी मात्रा में हैं। संसार की कुल सिंचित भूमि का पांचवां भाग भारत में है। इस पर भी भारत में अन्न का अभाव है यह आश्चर्य की बात है।

अच्छी फसल के लिए अच्छी भूमि और पानी आवश्यक है। यद्यपि कृषि योग्य भूमि की एक अधिकतम सीमा होती है और सिंचाई सुविधाओं का होना जलवायु तथा वर्तमान जल साधनों के सही उपयोग पर निर्भर है।

भारत में इस समय 8 करोड़ 90 लाख हेक्टर मीटर जल सिंचन क्षमता है। तकनीकी के विकास के साथ-साथ इस क्षमता के बढ़ने की आशा है।

एक अनुमान के अनुसार चौथी योजना के अन्त तक देश की कुल कृषि योग्य भूमि (17.5 करोड़ हेक्टर) में से 14 करोड़ 20 लाख हेक्टर खेती योग्य हो सकेगी। फसल वाली कुल भूमि का क्षेत्रफल 16 करोड़ 90 लाख हेक्टर होगा। नवीनतम अनुमानों के अनुसार भूमिगत व नदियों आदि के जल से कुल 10 करोड़ 70 लाख हेक्टर भूमि सींची जा सकती है।

देश की वर्तमान जनसंख्या 55 करोड़ है। 1974 के अन्त तक यह 59.6 करोड़ हो जाएगी। अतः जनसंख्या की पूर्ति तथा बढ़ते हुए जीवन स्तर के लिए अन्न व कपड़ों आदि का उत्पादन बढ़ाना होगा। खेती के लिए और भूमि नहीं के बराबर है। अतः उत्पादन में वृद्धि के दो ही तरीके हैं। एक से अधिक फसल उगाना और उत्पादन में वृद्धि। हाल में अधिक उपज देने वाले उन्नत बीजों तथा खाद के उपयोग परिणाम स्वरूप कृषि के तरीकों में बहुत उन्नति हुई है।

परन्तु खेती के उन्नत तरीकों से लाभ तभी हो सकता है जब सिंचाई निश्चित हो। जल एक महत्वपूर्ण पूरक है। भारत में वर्षा अधिकतर बरसाती मौसम में ही होती है और वह भी प्रति-वर्ष एक जैसी नहीं होती। साथ ही बहुत से भागों में वर्षा की मात्रा अनिश्चित है। वर्षा की अनिश्चितता से सूखे और अभाव का भय निरन्तर बना रहता है।

भारत में कुल मिलाकर 1973-74 के अन्त तक 4.5 करोड़ हेक्टर भूमि में सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो सकेगी। चौथी योजना के अन्त तक अनुमानतः 16 करोड़ 90 लाख हेक्टर भूमि में खेती होगी। इस प्रकार 12 करोड़ 40 लाख हेक्टर भूमि असिंचित रह जाएगी। मोटे तौर पर सिंचित भूमि के लगभग 80 प्रतिशत भाग में खाद्यान्न उगाए जाते हैं जबकि बाकी में नकदी फसलें उगाई जाती हैं। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् के महानिदेशक ने 26-3-72 को डा० राजेन्द्र प्रसाद स्मृति भाषणमाला में कहा था कि राष्ट्रीय प्रदर्शन कार्यक्रम व अखिल भारतीय कृषि परियोजना के अन्तर्गत एक हेक्टर से 10-15 टन की फसल प्राप्त की जा सकती है। यदि हम सिंचित भूमि से तीन टन अन्न के उत्पादन का अनुमान भी लगाएं तो सीधे-सादे हिसाब से सिंचित भूमि (45 मिलियन हेक्टर का 80 प्रतिशत) से 108 मी० टन का उत्पादन होगा। दूसरी ओर असिंचित भूमि से औसत फसल का 20 प्रतिशत अर्थात् 0.6 टन प्रति हेक्टर उत्पादन का अनुमान गलत न होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि असिंचित भूमि को 6 करोड़ टन अन्न अवश्य पैदा करना चाहिए। 16.8 करोड़ टन के उत्पादन में 10.8 टन सिंचित भूमि से होगा व 6 करोड़ टन असिंचित भूमि से। परन्तु वास्तव में उत्पादन बहुत ही कम है। यह इस बात का सूचक है कि देश में सिंचाई साधनों का पूरा उपयोग नहीं किया गया और सिंचाई साधनों के विकास पर लगाई गई अपार धन राशि का बहुत कम लाभ प्राप्त हुआ है।

नया दृष्टिकोण

चौथी योजना में बड़ी व छोटी सिंचाई योजनाओं पर बड़े-बड़े सरकारी प्रतिष्ठानों द्वारा 3000 करोड़ रुपए लगाए जा चुके हैं। इन योजनाओं में उपलब्ध सिंचाई साधनों के अधिकतम सम्भव उपयोग पर बल दिया गया है। अतः एक ओर सिंचाई साधनों की उपलब्धि और उनके उपयोग के अन्तर को कम किया जाए; साथ ही साथ, वर्तमान सिंचाई सुविधाओं का भी ऐसा सर्वेक्षण किया जाए कि उनसे अधिकतम लाभ-प्राप्त हो। सिंचाई सुविधाओं की अनिश्चितता तथा सिंचाई-प्रणालियों के पुराने होने के कारण इन सुविधाओं का उपयोग करने वाले भी इनका पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा पाते।

यह बात सब मानते हैं कि समन्वित क्षेत्र विकास के दृष्टिकोण को अपनाने से ही अधिकतम उत्पादन सम्भव है। सरकार भी इस पर विचार कर रही है। तीसरी योजना की समीक्षा से यह सिद्ध होता है कि खेती योग्य भूमि पर योजनाबद्ध निवेश के बिना सिंचाई योग्य पानी का समुचित उपयोग नहीं किया जा सकेगा। 1964-65 में ऐसे निवेश की आवश्यकता को स्वीकार किया गया परन्तु तीसरी योजना में इस उद्देश्य के लिए कुछ भी नहीं रखा जा सका।

1966—69 तक आयोजन वार्षिक आधार पर रहा। इन वार्षिक योजनाओं में खेती योग्य भूमि के लिए विशाल कार्यक्रम बनाया गया जिसके अधीन प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार, भूमि परीक्षण, भूमि को इकसार करना और ठीक-ठीक हिस्सों में बांटना, सिंचाई के उपयुक्त साधनों को पता लगाना, जल निकास की सुविधाएं उपलब्ध कराना, खेती के तरीके बताना, चकबन्दी, और ऋण, बीज, खाद और दवाई आदि उप-

लंब्ब कराना, सुदूर गांवों में जांच केन्द्र की स्थापना करना, किसानों में साक्षरता बढ़ाना व उन्हें खेती के उन्नत तरीके सिखाना, गांवों में सड़कें तथा उपज के लिए गोदामों व मंडियों की व्यवस्था करना, शामिल है।

चौथी योजना में

चौथी योजना बनाते समय इस बात पर सभी सहमत थे कि सिंचाई परियोजनाओं को पूरा करने के लिए जल के पूर्ण उपयोग की आवश्यकता है। केन्द्रीय सरकार ने यह स्वीकार किया है कि बहूद्देश्यीय संचार और विपणन कार्यक्रम, जिसमें कमाण्ड क्षेत्र में उपजों के संग्रह की सुविधाएं भी शामिल हैं, का वित्तीय भार वहन करना स्वीकार कर लिया है बशर्ते कि सम्बन्धित राज्य सरकारें अन्य सभी सुविधाएं प्रदान करें। इस पर भी जोर दिया गया कि किसानों को भूमि-समतल करने तथा खेतों के लिए नालियां आदि बनाने के निमित्त ऋण उपलब्ध करने के लिए सहकारी क्षेत्र का अधिकाधिक उपभोग किया जाए। चौथी योजना में केन्द्रीय क्षेत्र में इस योजना के लिए 15 करोड़ रुपए रखे गए थे। इसमें 10 सिंचाई परियोजनाएं शामिल थीं। चौथी योजना के मध्यावधि मूल्यांकन के समय यह रकम बढ़ा कर 25 करोड़ कर दी गई और इस योजना में 1972-73 व 1973-74 में सात परियोजनाएं और जोड़ दी गईं। विश्व बैंक का सहयोगी संस्थान अन्तर्राष्ट्रीय विकास एसोशिएशन इस शर्त पर आसान किश्तों पर सिंचाई परियोजनाओं के लिए ऋण दे रहा है कि सम्बन्धित राज्य अपने अधीन योजनाओं के क्षेत्र में कृषि सम्बन्धी विकास के लिए एक सुनिश्चित योजना बना लें। पिछले कुछ वर्षों से यह संस्था कमान्ड विकास प्रोग्राम की कई योजनाओं को वित्तीय सहायता दे रही है।

आवश्यक कदम

समन्वित क्षेत्रीय विकास का विचार योजना आयोग के समक्ष भी प्रस्तुत किया गया। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने भी इस योजना पर बार-बार विचार किया है। निम्नलिखित बातें कमाण्ड क्षेत्र के समन्वित विकास कार्यक्रम में सम्मिलित की जानी चाहिएं :—

(1) 40 हेक्टर के खेतों के ब्लाकों में, जिनमें सिंचाई-सुविधाएं उपलब्ध नहीं है, सिंचाई संसाधनों का विकास तथा आधुनिकीकरण किया जाए ताकि अभीष्ट कृषि उत्पादन का लक्ष्य पूरा हो सके।

(2) किसानों के ब्लाकों में सिंचाई के लिए छोटी नहरें व नालियों की व्यवस्था करना ताकि जल बेकार न जाए। साथ ही वाराबन्दी की उचित व्यवस्था करना ताकि प्रत्येक खेत को आवश्यक पानी मिल सके।

(3) कमाण्ड के जलविभाजक क्षेत्र में भूमि को संवारना ताकि किसानों को, जो उपज बोने को कहा गया है, उसमें सफलता मिले।

(4) सिंचाई सुविधाएं बढ़ाने के उद्देश्य से नदियों आदि के पानी के साथ-साथ भूमिगत पानी के साधनों का विकास। साथ ही कुछ चुने हुए ब्लाकों में भूमिगत व नहरी पानी में समुचित तालमेल।

(5) निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कमाण्ड क्षेत्र के विभिन्न ब्लाकों में फसलों का बुवाई-कार्यक्रम तैयार करना :—

(अ) जब पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो तो प्रति इकाई भूमि से अधिकतम उपज उगाना।

(ब) जहां पानी की पूर्ति मध्यम स्तर की हो वहां प्रति इकाई जल से अधिकाधिक उपज प्राप्त करना।

(ग) जहां पानी कम है वहां ऐसी फसलें उगाना जिन्हें पानी की कम जरूरत है तथा अधिक से अधिक जमीन को सूखे से बचाना।

(6) ऋण, बीज, खाद, ट्रैक्टर और दवाईयां छिड़कने की व्यवस्था करना।

(7) फसल की बिक्री के लिए उचित प्रबन्ध व फसल की छंटाई की योजना बनाना और संचार साधनों का अधिकाधिक उपयोग कराना ताकि किसानों को पूरा-पूरा लाभ मिले व क्षेत्रीय लोगों को काम मिले।

(9) फसल की छंटाई और बिक्री का उचित प्रबन्ध करना और उचित संचार साधन उपलब्ध कराना।

(शेष अगले अङ्क में)

[सहकारी समितियों के कार्य... .....पृष्ठ 9 का शेषांश]

लाभ पहुंचाने के लिए सहकारियों द्वारा किए जाने वाले कामों—ऋण उपलब्ध कराने और विपणन कार्य करने, आदि—को सुनियोजित करना होगा। दूसरे, छोटे और सीमान्त किसानों, आदिवासियों, मछेरों आदि के लिए अतिरिक्त आय तथा रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने होंगे। इन कार्यों में भी सहकारियों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। ये जितना ऋण देती हैं उनमें से लगभग 30 प्रतिशत लघु कृषकों को देती हैं।

आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण में सहकारी समितियों की भूमिका के बारे में भी मैं कहना चाहता हूं। देश में कण्ट्रोल के कपड़े का कुल वार्षिक उत्पादन 80 करोड़ मीटर होने का अनुमान है और इसमें से 90 प्रतिशत कपड़े का वितरण राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ता संघ, राज्य-स्तरीय सहकारी उपभोक्ता संघ और अन्य उपभोक्ता सहकारी समितियो द्वारा किया जाएगा। खाद्यान्न तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण का काम भी सहकारी समितियों के माध्यम से ही किया जाना चाहिए ताकि चीजें सही कीमत पर और आसानी से मिलती रहें। इससे विशेषकर कमजोर वर्गों को बहुत राहत मिलेगी। ❑

विदेशों में हिन्दी

बच्चू प्रसाद सिंह

हिन्दी आज सिर्फ भारत में ही नहीं, बल्कि संसार के करीब ढाई दर्जन देशों के सैकड़ों विश्वविद्यालयों और अन्य संस्थाओं में किसी न किसी रूप में पढ़ाई जा रही है। भारतवर्ष के बाहर कुछ तो ऐसे देश हैं जैसे मारीशस, फिजी, सूरिनाम, ट्रिनिडाड, गियाना आदि जहां हिन्दी का पर्याप्त विकास हुआ है। इन देशों में हिन्दी के विकास को देखकर ऐसा लगता है मानो हिन्दी के कुछ पौधे भारत से लेकर इन देशों में लगा दिए गए हों और नए परिवेश और नए परिधान में इन्होंने आकर्षक रूप ग्रहण कर लिया हो। मारीशस में मैंने स्वयं यह देखा कि उस देश के लोग जिस प्रवाह के साथ अंग्रेजी, फ्रेंच और क्रियोल बोलते हैं, उसी तरह धड़ल्ले से वे हिन्दी और भोजपुरी का भी प्रयोग करते हैं। उस द्वीप में सरकारी तौर पर अब माध्यमिक कक्षाओं में हिन्दी की पढ़ाई प्रारम्भ हो गई है और एक ऐसे देश में जहां की कुल आबादी 8 लाख है, लगभग ढाई-तीन सौ प्राथमिक पाठशालाओं में और स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा चलाई जाने वाली ढाई-तीन सौ पाठशालाओं में हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था विद्यमान है। मारीशस को आजाद हुए अभी पांच-छः वर्ष ही हुए हैं लेकिन इन पांच-छः वर्षों में उस देश में हिन्दी ने आश्चर्यजनक प्रगति की है। वहां के लेखकों की रचनाएं आज भारतवर्ष का प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में सम्मान के साथ छापी जा रही है। उनके कई उपन्यास यहां के प्रमुख प्रकाशकों ने छापे हैं। मारीशस के लोग अब भाषा सीखने की स्थिति में आगे बढ़कर साहित्य-सृजन में गतिशील हो रहे है। 'आर्योदय' और 'जनता' नाम की दो साप्ताहिक और अर्द्ध-साप्ताहिक पत्रिकाएं तो वहां पहले ही निकलती थीं, इधर 'अनुराग' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका तथा 'दर्पण', 'आभा' और 'प्रकाश' नामक हिन्दी की कई सामयिक पत्रिकाएं भी निकलने लगी हैं। इन सब को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे हिन्दी एक नए क्षेत्र में विकास के नए आयाम ग्रहण कर रही हो।

इसी तरह फिजी जैसे देश से हिन्दी के छह साप्ताहिक पत्र नियमित रूप से निकलते हैं और उनके अंकों को देखकर यह कहा जा सकता है कि ये पत्र सभी दृष्टियों से विविध विषय विभूषित हैं और इनकी तुलना भारत की श्रेष्ठ पत्रिकाओं से की जा सकती है। इसी प्रकार इस देश से लोगों ने हिन्दी महापरिषद् नाम की संस्था की स्थापना की है ताकि साहित्य-सृजन के क्षेत्र में उनको समुचित प्रोत्साहन और मार्गनिर्देशन मिल सके और समुचित रूप से लोग इस दिशा में अग्रसर हो सकें। अभी कुछ दिन पहले हम लोगों ने भारत सरकार की ओर से हिन्दी पुस्तकों की प्रदर्शनी का आयोजन फिजी ने कराया था और उस अवसर की सफलता का वर्णन सचमुच ही बड़ा उत्साहवर्द्धक है।

ट्रिनिडाड और सूरिनाम के बारे में भी जो सूचनाएं हमारे पास उपलब्ध हैं, उनके अनुसार ट्रिनिडाड और टोबागों में 27 ऐसी संस्थाए हैं जिनमें बी० ए० के स्तर तक की हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था है। इन संस्थाओं के माध्यम से अब तक तीन हजार से अधिक लोग हिन्दी सीख चुके हैं और आज भी काफी बड़ी संख्या में लोग वहां हिन्दी सीख रहे हैं। इसी प्रकार सूरिनाम में 143 ऐसी संस्थाएं हैं जो मध्यमा स्तर तक की हिन्दी सिखाती हैं और अब तक 60 हजार से अधिक लोग इन संस्थाओं के तत्वावधान में हिन्दी सीख चुके हैं और आज भी हजारों व्यक्ति हिन्दी सीखने की प्रक्रिया में है। इन देशों में हिन्दी प्रेम और हिन्दी के प्रति वहां के देशवासियों की श्रद्धा को देखकर ऐसा लगता है कि सचमुच हिन्दी के बारे में यह कहा जा सकता है कि "उपजहिं अनत अनत छवि लहहिं"। आज इन मुल्कों में जिस प्रकार हिन्दी की प्रगति हो रही है उससे वह आशा और प्रबल होती है जिसकी मांग अभी आज से दो महीने पहले मारीशस में आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय सभा में की गई थी। मेरा अभिप्राय मारीशस की सार्वदेशिक आर्य-सभा के सम्मेलन में पारित उस प्रस्ताव से है जिसमें कहा गया है कि हिन्दी को राष्ट्र संघ की भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए प्रयास किए जाएं। यदि इस प्रस्ताव ने कभी मूर्तरूप ग्रहण किया तो इसका बहुत अधिक श्रेय हमारे उन्हीं हिन्दी प्रेमी भाइयों को प्राप्त होगा जो भारत के बाहर हिन्दी के प्रचार और प्रसार में अपना सब कुछ न्यौछावर कर रहे हैं।

इस सन्दर्भ में मलेशिया, थाईलैंड, बर्मा, श्रीलंका और नेपाल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जहां हिन्दी के विकास की भूमि उतनी ही उर्वर और अनुकूल है जितनी भारत में या किसी भी अन्य देश में। इस सम्बन्ध में एक और सूचना देने के लोभ का संवरण में नहीं कर पा रहा हूं। संसार के लगभग 100 विश्वविद्यालयों में हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था है और कई ऐसे अन्य देश हैं जो इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि उनके यहां जो विश्वविद्यालय हैं या जो नए विश्वविद्यालय स्थापित हो रहे हैं उनमें हिन्दी के अध्यापन की भी समुचित व्यवस्था की जाए। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में 38, पश्चिम जर्मनी में 17, सोवियत समाजवादी गणतन्त्र संघ में 8 और इसी प्रकार जापान, इंग्लैण्ड, बेलजियम, में और 30-35 अन्य ऐसे देशों के विश्वविद्यालयों में भी हिन्दी के अध्यापन की व्यवस्था है।

भारत सरकार ने हमारे इन्हीं विदेशी भाई बहनों की इस अभिलाषा को पूर्ण करने की दृष्टि से विदेशों में हिन्दी प्रचार की योजना का कार्यान्वयन प्रारम्भ किया है जिसका प्रमुख उद्देश्य विदेशी भाइयों और बहनों के हिन्दी लेखन को प्रोत्साहित करना और विदेशी राष्ट्रिकों को हिन्दी का समुचित प्रशिक्षण देना है ताकि वे अपने देशों में हिन्दी का प्रचार-प्रसार कर सकें। ऐसे तमाम मुल्कों में जहां इसकी मांग है हिन्दी के पुस्तकालयों की व्यवस्था करना, जहां इनकों मांग हो और इसके साथ ही भारतीय भाषाएं जो विभिन्न स्वरूपों में विदेशों में बोली या लिखी जा रही हैं, उनका तुलनात्मक अध्ययन करना और इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपने विदेशी भाइयों और बहनों को आवश्यक वृत्तियां एवं सुविधाएं प्रदान करना इस योजना के प्रमुख लक्ष्य हैं। यह योजना मुख्य रूप से अभी उन देशों में ही चलाई जा रही है जहां भारतमूल के लोग बड़ी संख्या में रहते हैं। इन देशों में प्रमुख हैं—मारीशस, फिजी, सूरिनाम, ट्रिनिडाड, गियाना, मलेशिया, थाईलैंड, बर्मा, नेपाल।

हिन्दी पुस्तकों की प्रदर्शनी का उल्लेख तो ऊपर कर ही चुका हूं, इतना और बताना चाहूंगा कि इसी योजना के अन्तर्गत मारीशस के यात्री ने यहां आकर हिन्दी सीखी है और भारत सरकार की ओर से मारीशस को उपहार में एक हिन्दी प्रेस दिया गया है। विदेशों में जो भारतीय दूतावास हैं उनके पुस्तकालयों के लिए हर वर्ष एक लाख रुपये की हिन्दी पुस्तकें खरीद कर भेजी जाती हैं। इसी योजना के अन्तर्गत नेशनल बुक ट्रस्ट तथा केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा आयोजित लेखक शिविरों में विदेशों के ऐसे व्यक्तियों को आमन्त्रित किया जाता है जो जो इस दिशा में पहले से ही कार्यरत हैं। इस योजना के अन्तर्गत विदेशों में हिन्दी और संस्कृत केन्द्रों की स्थापना का भी प्रावधान है। यद्यपि अभी इस योजना के कार्यान्वयन का क्षेत्र मुख्य रूप से उपरोक्त देशों तक सीमित रखा गया है, फिर भी जब कभी कहीं से हिन्दी के लिए किसी प्रकार की भी सहायता की मांग आती है, चाहे वह पुस्तकों की हो या किसी उपकरण अथवा उपस्कर की, तो उसे भी भारत सरकार द्वारा पूरा किए जाने की भरसक चेष्टा की जाती है। इस योजना के अन्तर्गत विदेशों से अनेक लोग भारत आकर हिन्दी सीखते हैं और फिर अपने देशों को वापस जाकर हिन्दी का प्रचार-प्रसार करते है। भारत के भीतर और भारत के बाहर भी कई मुल्कों से अब इस बात की मांग की जाने लगी है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में जो स्वीकृत भाषाएं हैं उनमें हिन्दी का नाम भी जोड़ा जाए। संख्या की दृष्टि से इस मांग के औचित्य पर कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती, किन्तु जब भारतेतर देशों के हिन्दी प्रेमी इस बात की मांग करने लगें तो हमारी इस आकांक्षा को प्राप्त करने में सच्ची सहायता मिलेगी और आशा है कि संसार के सभी हिन्दी प्रेमी जिस दिन सच्चे दिल से एक स्वर से इस मांग को राष्ट्रसंघ के समक्ष प्रस्तुत करेंगे उस दिन मांग अवश्य ही पूरी होगी। सम्भव है वह दिन अब बहुत दूर नहीं हो।

□

जागो ! अब भारत मां के लाल

मदन विरक्त

कुरुक्षेत्र ऐसा रच डालो, भय खाए नित काल।
जागो अब ! भारत मां के लाल ॥

जन-जन के मन हर्षित कर दो, लहरा दो मधु सागर।
रहे न खाली यहां किसी के जीवन रस की गागर ॥
काले धन की काली छाया, कर ना सके कमाल।
जागो अब ! भारत मां के लाल ॥

निर्धनता, भुखमरी और बेईमानी दूर भगा दो।
घर-घर से मिट जाए अन्धेरा, ऐसे दीप जला दो ॥
महलों के आगे ही कर दो, कुटियों के भी भाल।
जागो ! अब भारत मां के लाल ॥

मुंह के झूठे वादेगीरों को मत गले लगाओ।
गिर जो गए उठाओ उनका, आगे सदा बढ़ाओ ॥
कांप उठे शोषण की काया, बनकर जलो मशाल।
जागो ! अब भारत मां के लाल ॥

जगमग-जगमग, कोना-कोना भारत भू का कर दो।
समता की किरणों को छू कर चांदी-सोना भर दो ॥
आओ सब कर्त्तव्य निभाओ, जीवन बने विशाल ॥
जागो ! अब भारत मां के लाल ॥

सम्पादक-सा० 'भारत ग्राम'
24, ईस्ट अंगद नगर, दिल्ली-51

प्रोटीन की कमी की समस्या : एक समाधान

डा० कमलाकान्त हीरक

परम्परागत कृषि क्रान्ति के फैलते हुए क्षेत्र, विकास की नई पद्धतियों के बढ़ते हुए दायरे, नए-नए अनुसन्धानों के उठते हुए चरण और व्यापक साधनों द्वारा उनका प्रसारण इत्यादि देखने से ऐसा अनुमान होता है, मानो हर प्रकार की समस्याओं का समाधान शीघ्रातिशीघ्र एवं बड़ी आसानी से हो जाएगा। किन्तु नहीं, समस्याओं का ऐसा तांता लगा हुआ है कि एक के बाद एक समस्या स्वयं ही आकर सामने खड़ी हो जाती है और आज मुख्य समस्याओं में एक बहुत ही मुख्य समस्या है भोजन में प्रोटीन की कमी, वह प्रोटीन जिसकी कमी से अनेक घातक तथा भयानक रोग पैदा हो सकते हैं, क्योंकि एक मनुष्य को प्रतिदिन 61 ग्राम प्रोटीन की, जिसमें 2,370 कैलोरी शक्ति प्राप्त होती है, आवश्यकता पड़ती है जबकि भारत में औसतन प्रोटीन की प्रति व्यक्ति 49 ग्राम मात्रा ही उपलब्ध है। प्रोटीन के अभाव की समस्या स्वयं के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए भी शोचनीय है। यह सभी जानते हैं कि किसी इमारत को तैयार करने में विभिन्न सामग्रियों जैसे—ईंट, गारा, चूना, सीमेण्ट, पत्थर इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है ठीक वैसी ही आवश्यकता मनुष्य, पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों के लिए भी है। जिन विभिन्न यौगिकों से मिलकर मानव शरीर का निर्माण हुआ है—उन्हें हम प्रोटीन की संज्ञा देते है, जिसमें अमीनो अम्ल नामक छोटी-छोटी इकाइयां जुड़ी रहती हैं जैसे— कार्बन, आक्सीजन, हाइड्रोजन, नाईट्रोजन इत्यादि। प्रोटीन युक्त आहार का तात्पर्य है—शरीर को आवश्यक अमीनो अम्लों का प्राप्त होना।

वर्तमान समय में देश की कम से कम 25 प्रतिशत जनसंख्या प्रोटीन कैलोरी की कमी से कुपोषण की शिकार है और उसमें भी बच्चे इससे अधिक प्रभावित हैं। कृषि-क्रान्ति या हरित क्रान्ति द्वारा अन्न उत्पादन की मात्रा पहले की अपेक्षा अधिक हो गई है किन्तु इतने पर ही हाथ पर हाथ धरकर चुप्पी साध लेना नहीं। हमें देखना यह है कि पैदावार बढ़ने के अनुपात में प्रोटीन का भी उत्पादन हो रहा है अथवा नहीं, क्योंकि इधर कृषि क्रान्ति द्वारा रबी की फसलों में दालों, फलियों और तिलहनों का बोना कम कर दिया है, जो प्रोटीन के स्रोत हैं। गेहूं धान इत्यादि के उत्पादन के इतने तौर-तरीके उन्नतिशील बीज, नई-नई पद्धतियां पनप रही हैं जिनमे कृषकों का ध्यान अधिकतर इसी ओर होता जा रहा है। दालों, तिलहनों, मोटे अनाजों, दूसरे प्रकार की सब्जियों के प्रति उनकी आस्था इसलिए नहीं रह गई है कि न तो उनको उनने उन्नत बीज तथा अन्य साधन, उपलब्ध हैं और न उन्हें बोने से अधिक लाभ हो रहा है। कृषकों को इन फसलों द्वारा उचित मूल्य भी नहीं प्राप्त हो पाता है। भारत ही नहीं, सभी प्रमुख देशों मे अन्तर्राष्ट्रीय कृषि अनुसन्धान संस्थाओं ने दालों, तिलहनों, फलियों, सब्जियों इत्यादि पर अनुसन्धान करने में रुचि नहीं ली है और इस रुचिहीनता का कारण यह हुआ है कि प्रोटीन प्रदान करने वाली फसलों का उत्पादन ही कम हो गया है।

आज भी अपने देश में अनेक ऐसे क्षेत्र है जहां के लोग केवल आलू या शकरकन्द पर ही गुजारा करते हैं। वहां के लिए प्रोटीन तो एक मोहक सपने के समान है। और कुछ ऐसे स्थान है जहां खिसारी ही मिल पाती है जो प्रोटीन-युक्त होते हुए भी जहरीली है अर्थात् उसके अधिक प्रयोग से लकवा जैसी घातक बीमारी की सम्भावना बनी रहती है।

अब समस्या यह है कि प्रोटीन का यदि इतना महत्व है तो प्रोटीन को कहां से और किस प्रकार प्राप्त कर सकते है, क्योंकि बिना इसके जीवन जीना मुश्किल सा हो जाएगा। अनेक बीमारियों के पंजों में फंस जाना पड़ेगा। पर्याप्त कैलोरियों के प्राप्त न होने से निजी काम धन्धों को करने के लिए भी रुचि एवं शक्ति नहीं मिल पाएगी। इस लिए कहना यह है कि कम खर्च में प्रोटीन युक्त अनाजों, तिलहनों, दालों, फलों, सब्जियों इत्यादि का अधिक से अधिक उत्पादन हो। इसके अतिरिक्त, अण्डों, मछलियों एवं मांस आदि की भी पैदावार बढ़ानी चाहिए, क्योंकि ये सब भी अधिक प्रोटीन के स्रोत हैं। किन्तु आज इनकी कीमत इतनी अधिक है कि जनसाधारण के लिए ये सब चीजें दुर्लभ ही हैं। वे इन्हें दैनिक भोजन के साथ नहीं मिश्रित कर सकते हैं।

लेकिन अब प्रोटीन की कमी के कुप्रभावों को देखकर, अपने देश के कृषि वैज्ञानिकों की आंखें खुल गई हैं। आज वे सतत प्रयत्न में लगें हुए हैं कि ऐसे नए-नए विकास करें जिससे प्रोटीन की कमी न खटके और इन्ही सिद्धान्तों को अपनाकर क्रान्तिकारी कदम उठाए जा रहे हैं। "भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्" ने 1970 में पूसा इन्स्टीटयूट और हैदराबाद की राष्ट्रीय पोषण अनुसन्धानशाला के परस्पर सहयोग से गेहूं, जौ, धान, ज्वार, बाजरा मक्का इत्यादि में प्रोटीन बढ़ाने के लिए एक और योजना शुरू की है जिसमें विभिन्न प्रकार की प्रोटीन सम्बन्धी नई-नई खोजें की जा रही हैं। इसके अतिरिक्त, 'भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद्' से सम्बद्ध अन्य संस्थानों तथा कृषि विश्वविद्यालयों में भी कुपोषण सम्बन्धी कार्य शुरू किए गए हैं जिनके प्रभाव काफी अच्छे रहे। मक्का की तीन लाइसिन-बहुल संकुल जातियों का विकास किया गया जिनमें प्रोटीन की काफी अधिकता है। केन्द्रीय कन्दवर्गीय

फसल अनुसंधान, त्रिवेन्द्रम् में टेपिओका कन्द की नई किस्म 'लानेरा' पर कार्य चल रहा है जिसमें 3.75 प्रतिशत (कच्चे में) और 8.65 प्रतिशत (सूखे में) प्रोटीन है। 1970 में तीसरी अखिल भारतीय सोयाबीन गोष्ठी, (जबलपुर) में डाक्टर मार्टिन ने बताया था कि सोयाबीन की पैदावार हमें अधिक से अधिक बढ़ानी है, क्योंकि गेहूं, दाल, दूध, मांस आदि की अपेक्षा इसमें प्रोटीन की मात्रा अधिक है, अर्थात् 40 प्रतिशत प्रोटीन एवं 90 प्रतिशत तेल की मात्रा निहित है। 'राष्ट्रीय खाद्य कांग्रेस 1970' के लेख में यह आशा व्यक्त की गई है कि 1981 तक प्रोटीन का 80 प्रतिशत भाग केवल अन्न एवं शाक-सब्जी से ही मिलेगा। फल-मेवों में भी प्रोटीन की मात्रा कम ही पाई जाती है, इसलिए उन पर भी अनुसन्धान कार्य कम किए गए हैं। किन्तु आज इनमें भी प्रोटीन की मात्रा बढ़ाने में कृषि वैज्ञानिकों ने कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।

यह सत्य है कि वनस्पतियों से प्राप्त प्रोटीन, पशु प्रोटीन की तुलना में कम एवं निम्न कोटि का होता है। इसलिए यह आवश्यक है, मछली पालन, कुक्कुट पालन, शूकर पालन, दुग्ध-उत्पादन के लिए पशु पालन इत्यादि में अधिक से अधिक रुचि लें। इधर 'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्' द्वारा तालों, पोखरों एवं नदियों में मछली संवर्धन के लिए (बैरकपुर,) समुद्री मछली पर अनुसन्धान के लिए (तमिलनाडु) तथा मछली प्रयोग के लिए (एर्नाकुलम्) इत्यादि स्थानों पर अनुसन्धान संस्थान खोले गए हैं। विभिन्न प्रकार के कुक्कुटों द्वारा अण्डों, चूजों, मांसों का उत्पादन भी 1969 में 16 लाख 20 हजार मीट्रिक टन हुआ था जो प्रोटीन का एक बहुत बड़ा स्रोत हैं। इनके मांसों में 20 से लेकर 35 प्रतिशत तक प्रोटीन की मात्रा होती है जिससे 100 ग्राम द्वारा 138418 कैलोरी उर्जा प्राप्त होती है। इसी प्रकार विभिन्न जातियों के शूकरों में भी प्रोटीन की मात्रा को बढ़ाने के लिए विभिन्न वैज्ञानिक प्रयास किए जा रहे हैं।

"भूख से मुक्ति "अभियान के अन्तर्गत भी इस समय देश में 36 छोटी बड़ी योजनाएं कुपोषण के विरुद्ध स्थापित हैं और इन योजनाओं पर 2,312 करोड़ रुपये खर्च होने की सम्भावना है। इन योजनाओं द्वारा मुर्गी पालन, डेरी विकास, मछलीपालन, पशुपालन, फल-सब्जी कार्यक्रम एवं पोषाहार परियोजनाएं चलाई जाएंगी और चलाई जा रही हैं क्यों कि देश की समृद्धि, देश के नागरिकों के स्वास्थ्य पर ही निर्भर हैं। □

सहयोगियों की राय

केन्द्रीय कृषि राज्यमन्त्री श्री ए० पी० शिन्दे ने कहा है कि अभाव के दिनों में दिल्ली में सोलह सौ से अधिक छापे मारे गए। इसी सिलसिले में अनेक व्यक्तियों की गिरफ्तारी तथा अनेक के लाइसेन्स निरस्त करने की भी कारवाई हुई है। देश में इस प्रकार का अभियान चलाया जाए और अपसंचय, मुनाफाखोरी तथा अवैध लाभ कमाने वालों को दण्डित किया जाए, यह उचित ही है पर यह सावधानी रखनी होगी कि ईमानदारी और सच्चाई से व्यापार करने वालों के समक्ष व्यर्थ की कठिनाई न उत्पन्न की जाए। व्यापारियों की यह शिकायत है कि अवांछनीय तत्वों द्वारा खाद्यन्नों के आने-जाने पर अनावश्यक रोक-टोक तत्काल बन्द न की गई तो ऐसे वातावरण में गल्ला बाजार को अनिश्चित काल के लिए बन्द करना होगा। इसी प्रश्न को लेकर सोमवार को वाराणसी की प्रधान मण्डी में बन्दी रही है। यह तो सांकेतिक हड़ताल है। स्थिति नहीं सुधरी तो वह हड़ताल आगे भी चल सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि आजकल अवांछनीय तत्व भी गल्ले के लाने ले जाने पर अनावश्यक रोक-टोक करते हैं। गल्ले के व्यापारियों को आए दिन इस संकट का सामना करना पड़ता है। आजकल कुछ लोगों का यही पेशा हो गया है जो देश एवं समाज सेवा के नाम पर खा-कमा रहे हैं और जो लोग निःस्वार्थ भाव से इसमें लगे हैं, उन्हें अधिकारियों को स्थिति की सूचना देनी चाहिए और स्वयं हस्तक्षेप न करना चाहिए।

आज 31 जुलाई, 1974

मांग और उपलब्धि के बीच पैदा असन्तुलन को ठीक करने के लिए सरकार ने मांग पर अंकुश लगाने का रास्ता अपनाया है। किन्तु, उपलब्धि बढ़ाने के लिए उठाये जा रहे कदमों का नतीजा बाद में ही सामने आएगा। अभी तक तो यही लग रहा है कि उद्योग हड़ताल पर है और वह उत्पादन बढ़ाने में दिलचस्पी नहीं ले रहा। आज बाजार में मांग और उपलब्धि का सामान्य नियम विफल हो रहा है क्योंकि कमी काफी हद तक बनावटी है। उत्पादन बढ़ाने के लिए भी सरकार को कुछ कठोर कदम उठाने पड़ेंगे—निजी और सर्वजनिक, दोनों ही क्षेत्रों में।

प्रधान मन्त्री व वित्त मन्त्री ने वर्तमान संकट से निपटने के लिए विभिन्न उपायों के जिस समुच्चय का आश्वासन दिया था, पिछले कुछ दिनों में उसके अन्तर्गत उठाए गए अनेक कदम सामने आ चुके हैं। असली आवश्यकता अर्थ-व्यवस्था के समग्ररूप में कुशल प्रबन्ध की है। आशा है कि आने वाले दिनों में इन कदमों से स्थिति में सुधार होगा।

नवजीवन 1 अगस्त, 1974

रोटी के जाल में

नरेन्द्र भट्ट

रोटी । रोटी । और रोटी । विश्व के समस्त महाद्वीपों में 'रोटी' अपने 'डबलरोटी' 'ब्रेड' आदि विविध रूपों में अन्नपूर्णादेवी की सौगात के रूप में जानी जाती है ।

'रोटी' शब्द अब एक प्रकार की खाद्य वस्तु का तात्पर्य अभिव्यक्त करने वाला शब्द ही नहीं रहा किन्तु उसके साथ ही वह सम्पूर्ण 'मानव आहार' का पर्याय शब्द बन चुका है ।

'रोटी' के लिए धरती का दोहन कार्य कृषि युग के प्रारम्भ के साथ ही हुआ था । सभ्यता के विकास के साथ रोटी के लिए मानव संघर्ष में उत्तरोत्तर वृद्धी होती गई ।

'रोटी' का अर्थशास्त्र अब अलग तो रोटी का कृषि कृषिशास्त्र अलग । 'रोटी' की राजनीति अलग तो 'रोटी' का मजहब अलग । सबसे विशेष तथ्य तो यह है कि 'रोटी' को अर्जित करने के तरीके इतने अधिक हैं कि यदि उनका विस्तृत विवरण दिया जाए तो 'रोटीशास्त्र' अलग तैयार हो सकता है । मानव की मूल प्रवृत्ति है 'क्षुधा' । इस मुख्य मूल प्रवृत्ति की तृप्ति के लिए 'रोटी' एक साधन रही है ।

रोटी के लिए एक सामाजिक मनुष्य को कितने पापड़ बेलने होते हैं । 'रोटी' शब्द केवल भोजन के समय ही उपयोग में नहीं लाया जाता किन्तु वह लोकवार्ता और लोक व्यवहार में अनेक स्थानों पर प्रयोग में लाया जाता है । लोकवार्ता और लोक व्यवहार में रोटी का इन्तजाम करने और अपनी रोटी कमाने में समाज का हर जिम्मेदार सदस्य जुटा हुआ है । रोजी के लिए रोटी है अथवा रोटी के लिए रोजी है यह जानना कठिन हो जाता है जहां 'रोजी रोटी' का सवाल सामने आ जाता हो ।

भाई यह तो अपनी अपनी रोठी है। यह तो व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है कि वह 'पसीने की रोटी' को पसन्द करता है या 'हराम की रोटी' को । राष्ट्र की मांग है कि प्रत्येक नागरिक अपनी 'दो रोटी' पसीना बहाकर खाए ।

लेकिन भारत में ऐसे लाखों लोग हैं जो 'रोटीराम' हैं और द्वार-द्वार पर 'दे-दे भूखे पेट को रोटी का टुकड़ा' गाते फिरते हैं । भारत में भिखारियों की समस्या विकट है । ईश्वर जाने यह 'ब्रेड एण्ड बटर' की समस्या कब हल हो पाएगी !

हमारे देश की रोटी का सम्बन्ध मानसून से पर्याप्त रूप से जुड़ा हुआ है । अक्सर होने वाली अतिवृष्टि या अनावृष्टि भारत जैसे अभावग्रस्त देश में मालवी बोली का लोकांकित—'टोटा के घर में रोटी की राड़' को चरितार्थ कर देती है । भारत का बजट भी बहुत कुछ मानसून के ऊपर निर्भर है । वृष्टि उचित रूप से हो,उत्तम कृषि हो तो हमें रोटी के लिए अन्य राष्ट्रों के आगे हाथ नहीं फैलाना पड़ता है ।

साधारणतः उस परिवार को आर्थिक रूप से सुखी समझा जाता है जो 'चैन से रोटी' खाता हो या 'दाल रोटी' जुटा लेता हो । लेकिन बढ़ती हुई मंहगाई के इस जमाने में जहां 'रोटी की बन्दर-बांट' होती हो वहां बेचारी लोमड़ियों को नाममात्र की रोटी पर ही पेट पालना पड़ता है । जहां 'रोटी के लाले' पड़ते हों वहां 'रोटी का हिसाब' मजबूरी में रखा ही जाता है ।

मध्यप्रदेश के मालव क्षेत्र में जिसके लिए कहा जाता है 'मालव धरती गहन गम्भीर, डगडग रोटी पगपग नीर' ऐसे क्षेत्र में रोटी के लिए कुछ नगरों में गल्ला लूटने की घटनाएं हुई हैं । इसे क्या कहा जाए ? सच में रोटी और पेट सब कार्य करवाते हैं ।

लोककवि घाघ कहते हैं 'सोरह मकनी खाय, उसके मरे न रोइए ।' सोलह रोटियां खाने वाले निकम्मे के मरने पर चाहे न रोएं पर क्षेम से रोटी खाने वाले और कर्मठ और ईमानदार की रोटी पर 'लात मारना' अन्याय है । रोटी वही खाना उत्तम है जो प्रसन्न चित्त से परमी गई हो । रहीम का यह कथन "रहिमन रहिला के भली, जो परसे चित आई । परसत मन मैला करै सो मेदा जरि आई" । शायद रोटी के मामले में आपने भी परखा हो ।

घटनाएं और रोटी

रोटी के साथ कुछ ऐतिहासिक महत्व की घटनाएं भी जुड़ी हुई हैं । प्रत्येक वस्तु का इतिहास होता है । रोटी का भी इतिहास है । किन्तु प्रत्येक ऐतिहासिक वस्तु गौरवपूर्ण और महत्वपूर्ण नहीं होती ।

अपने स्वाभिमान, स्वाधीनता, और स्वदेश प्रेम का गौरव लिए जगल-जंगल भटकता हुआ वीर राणाप्रताप । वन में एक बार तो ऐसी मुसीबत आई कि रोटी बनाने के लिए अन्न दुर्लभ हो गया । प्रताप के बच्चों के लिए घास की रोटियां बनीं । बच्चे उन रोटियों को खाने के लिए तैयार थे । किन्तु वनबिलाव आया और रोटियां छीनकर भाग गया ।

यह प्रताप के दारुण दुःख की घड़ी थी । उनका धैर्य डगमगाने लगा । यह क्या ? मेरे बच्चों के नसीब में घास की बनी रोटियां भी नहीं । क्या मैं अकबर के सामने झुक जाऊं ? नहीं-नहीं । ऐसा नहीं हो सकता ।

प्रणवीर प्रताप को इस अन्तर्द्वन्द्व से उबारा भामाशाह ने । उस देशभक्त महादानी ने दान और त्याग की वह मिसाल कायम की जो 'रोटियों की घटना के प्रभाव' को प्रताप के हृदय से दूर कर सकी ।

सन् 1857 के भारतीय स्वाधीनता संग्राम में कमल पुष्प के साथ चपाती या

रोटी ने भी जन जागरण में प्रेरक कार्य किया था।

उस समय जन सामान्य में प्रचार करने का साधन रोटी बनी। एक गांव का कोटवार या चौकीदार सिर्फ एक रोटी लेकर निकट के गांव में जाता और उस गांव के चौकीदार को उसे देता था। वह चौकीदार सारे गांव के लोगों को एकत्रित करता था। उस गांव का चौकीदार उस रोटी में से एक टुकड़ा स्वयं खाता और शेष बची रोटी वहां एकत्रित, मौजूद लोगों में बांट देता। रोटी के इस पावन प्रसाद को गांव के सब लोग ऊंच-नीच, जाति-पांति का भेदभाव छोड़कर बड़े प्रेम और उमंग के साथ लेते थे। इस रोटी के प्रसाद को खाने का मतलब था कि वे सभी आनेवाली आजादी की लड़ाई में भाग लेंगे और अंग्रेजी हुकूमत को दूर हटाकर चैन लेंगे।

सब लोगों में रोटी बांट देने के बाद उस गांव का चौकीदार एक नई रोटी बनाकर अपने पास के गांव में जाकर वहां के चौकीदार को दे आता। उस गांव में भी रोटी बांटने की वही प्रक्रिया दोहराई जाती।

इस तरह देश के इस छोर से लेकर उस छोर तक, कश्मीर से कन्या कुमारी और अटक से लेकर कटक तक रोटियां जनजाग्रति का सन्देश देती हुइ घूमीं।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति और रूस की जार के समय हुई क्रान्ति के प्रमुख कारणों में एक प्रमुख कारण नंगे भूखे लोगों को रोटी खाने को नहीं मिलना था। सामन्तशाही और जारशाही के अत्याचार चरम सीमा पर पहुंच चुके थे। फ्रांस में सामान्त लोग गरीब किसानों के खेतों पर से घोड़े दौड़ाते हुए निकल जाते थे और किसान कुछ भी कह नहीं सकते थे। फ्रांस का राजा लुई (सोलहवां) और रानी मेरिया अन्त्वायने अपने आराम और विलास में डूबे रहते। राजा से भूखे लोगों ने जब प्रार्थना की कि उन्हें रोटी चाहिए, तब राजा का जवाब था रोटी नहीं मिलती तो 'केक' क्यों नहीं खाते ?

अन्त में रोटी के भूखे दीन हीन लोगों ने क्रान्ति की और जनता ने शासन सत्ता अपने हाथ में ले ली। सोवियत रूस में सत्ता मजदूरों की पार्टी के हाथों में हो गई। भूखे लोगों के सामने सत्ता के प्रति वफादारी का उपदेश कोई अर्थ नहीं रखता था। जारशाही ने क्रान्तिकारियों के सन्मुख अन्त में पराजय स्वीकार की थी।

रोटी को 'श्रम और ईमानदारी' से कमाने की एक ऐतिहासिक नहीं एक लोककथा गुरु नानक के जीवन से सम्बन्धित है। गुरु नानक एक समय किसी गांव में यात्रा करते हुए पहुंचे। उनके आगमन का समाचार सुनकर गांव का एक जमींदार उनका आतिथ्य करने के लिए आया। उसने नानक बाबा से घर चलकर भोजन करने के लिए कहा। किन्तु नानक बाबा ने इन्कार कर दिया। उसी समय एक किसान ने आतिथ्य ग्रहण करने के लिए कहा तो महात्मा नानक ने स्वीकृति दे दी। किसान को स्वीकृति देने और अपने को इन्कार करने की बात पर जब जमींदार ने आपत्तिपूर्ण निवेदन नानक के सन्मुख किया तो गुरु नानक ने किसान और जमींदार दोनों के घर से भोजन मंगवाया। जमींदार के घर से हलवा बनकर आया और किसान के घर से रूखीसूखी रोटियां आईं। गुरु नानक ने किसान, जमींदार और उपस्थित जनसमुदाय के सन्मुख कहा 'देखिए किसके यहां का भोजन योग्य है ?' उन्होंने हलवा को दोनों हथेलियों के बीच रखकर दबाया तो उसमें से खून की बूंदें नीचे टपकने लगीं। फिर रोटियों को हथेलियों के बीच रखकर दबाया उसमें से दूध की धार बह निकली।

यह था मेहनत और ईमानदारी से कमाई रोटी का करिश्मा। शोषण करने वाले शोषक की रोटी में से खून बूंदों के अलावा निकलेगा ही क्या ?

अब असन वसन छाजन के साथ भोजन या भोजन का पर्याय बनी 'रोटी' का जुटाना दिन-ब-दिन दुश्वार होता जा रहा है। रोटी की समस्या बीसवीं सदी के आठवें दशक में विकट रूप धारण कर चुकी है।

रोटी की समस्या भारतीय उपमहाद्वीप की ही नहीं सम्पूर्ण एशिया के 95% देशों की, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के अधिकांश देशों की एक राष्ट्र-व्यापी, पेचीदा और ज्वलन्त समस्या है। इसका हल शासनतन्त्र, अर्थशास्त्री, जनसेवक, राजनीतिज्ञ ढूंढ निकालने में लगे हुए हैं। किन्तु 'रोटी' का सवाल सुरसा के बदन की तरह बढ़ता और विकराल होता जा रहा है।

'रोटी' की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में अधिक से अधिक उत्पादन जनसंख्या पर नियन्त्रण, वितरण की सुव्यवस्था आदि तथ्यों को व्यावहारिक रूप देना होगा। 'रोटी' जो समस्त आहारमात्र का पर्याप्त पर्याय बन चुकी है, विश्व के करोड़ों लोगों को पूरी तरह कब प्राप्त होगी ईश्वर जाने ? ऐसे समय पोषक आहार की बात ही हास्यास्पद होगी।

राष्ट्रपिता गांधी जी कहा करते थे कि "आहार शरीर के लिए है न कि शरीर आहार के लिए।" इसी तरह हम रोटी खाने के लिए नहीं जीएं बल्कि कर्त्तव्यरत, कर्मठ और आनन्दमय जीवन जीने के लिए रोटी खाएं।

रोटी के बारे में दूसरे देशों की कहावतों में एक कहावत बड़ी मार्मिक और सरस है। वह है "यदि तुम्हारे पास दो पैसे हों तो एक से रोटी खरीदो, दूसरे से फूल। रोटी तुम्हें जिन्दगी देगी और फूल तुम्हें जीने की कला सिखाएगा।" इस कहावत में रोटी का समूचा वर्णन समाया हुआ है।

□

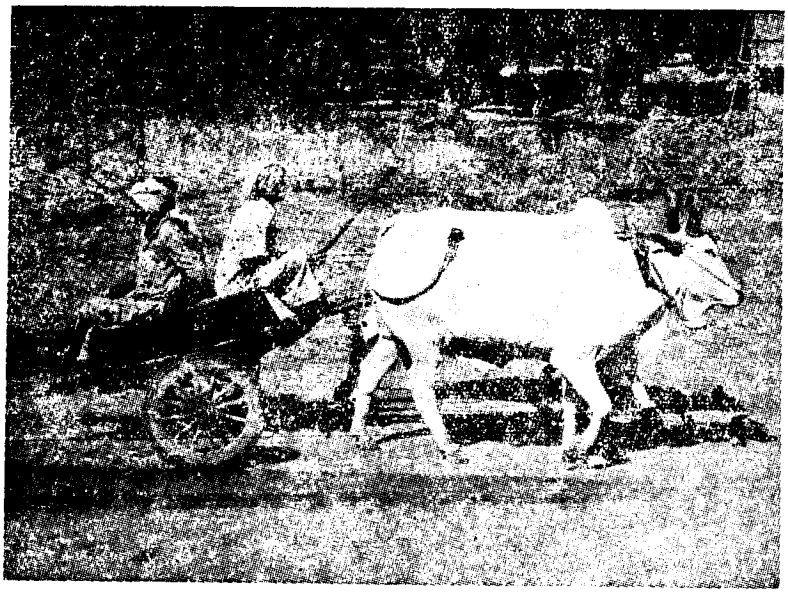

चलो ग्राम की ओर

कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

पिछले कुछ अरसे से लगभग समस्त विश्व में औद्योगीकरण की गति तीव्रतर होती जा रही है और औद्योगीकरण की इस तीव्रता ने विश्व के समस्त देशों को तत्कालीन परिस्थियों के अनुरूप संवारा भी है और बिगाड़ा भी है। क्या संवारा है यह मेरे प्रस्तुत निबन्ध का विषय नहीं है। वायु प्रदूषण और उस पर होने वाली नित्य की चर्चा उसी बिगड़ने बिगाड़ने के क्षेत्र की बात है जिस का मैंने ऊपर जिक्र किया है।

अस्तु ! मुझे औद्योगीकरण की समस्या को भारत के सन्दर्भ में देखना है जिसके बारे में सही मायनों में कहा जा सकता है कि यह ग्रामों का देश है और कृषि प्रधान देश है। औद्योगीकरण ने भारत की रीढ़ इन ग्रामों पर ही गहरा कुठाराघात किया है। ग्रामों से निकल कर लोग नगरों में सिमट रहे हैं तथा ग्राम महत्ताहीन होते जा रहे हैं। इससे जहां पिछले कुछ दशकों में भारत में बड़े बड़े नगर केन्द्र विकसित हुए हैं वहां नागरीय और ग्रामीण जीवन में गहरा असन्तुलन व्याप्त हो गया है। नगर में इस असन्तुलन का मुख्य कारण जनसंख्या का बढ़ता घनत्व है। ग्रामों में इसका कारण जनसंख्या की विरलता और उसका अनुपयोगी होना है क्योंकि ग्रामीण जनसंख्या का उपयोगी तत्व तो नगरों की ओर बेतहाशा भागा जा रहा है। नगरों की ओर लगाई जा रही इस अन्धी दौड का एक और कुपरिणाम निकला है कि बड़े-बड़े नगर केन्द्र साक्षात् स्वर्ग और नरक में विभाजित हो गए हैं। स्वर्ग से मेरा अभिप्राय उस आभिजात्य धनसम्पन्न वर्ग से है जो येन-केन-प्रकारेण धनकुबेर बने बैठे है, जिन्होंने नगरों में "माडल टाऊन संस्कृति" को जन्म दिया है। नरक से मेरा अभिप्राय उस निम्न और मध्यम वर्ग से है जो अपनी सम्पूर्ण चेष्टाओं के बावजूद नगरों के आर्थिक दुष्चक्र में बुरी तरह घिर चुका है और घुट-घुट कर नारकीय जीवन जीने को विवश है। निम्न व मध्यम वर्ग की यह घुटन टूटन छटपटाहट और आभिजात्य वर्ग की कृत्रिमता नगरों के सम्पूर्ण जीवन को विषाक्त किए जा रही है।

औद्योगीकरण की इस दोहरी मार का शिकार वे ग्राम हुए हैं जिनमें भारत की 80% जनता निवास करती है। यदि नगर की जिन्दगी का एक अपना पहलू है तो ग्राम की जिन्दगी का अपना दूसरा पहलू है। सर्वप्रथम तो यह है कि ग्राम आज दिशा निर्देश न करने वाले रहकर नगरों से दिशादान के अधिकारी बन गए हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास का गहराई से सिंहावलोकन करने वाला विद्यार्थी भारतीय ग्रामों की शिक्षा निर्देश से दिशा दान तक की लम्बी यात्रा के बीच छिपी व्यथा का आसानी से अनुभव कर सकता है। द्वितीय, नगरीकरण की इस प्रक्रिया ने ग्रामों को सैकेण्डरी स्थान पर लाकर रख दिया है। इसका प्रमुख कारण नगरों की वह राजनैतिक चेतना है जिससे ग्राम यदि पूर्णरूप से शून्य नहीं तो हम ऐसा कह सकते हैं कि वे अभी आधे अधूरे राहों में भटक रहे हैं। दरअसल मैं कहना चाहूंगा कि आज के राजनैतिक चिन्तन का नगरीकरण हो गया है। जनकल्याण के नाम पर जितनी भी योजनाएं बनाई जाती है उनमें नगर का जन नागरिक और ग्राम का जन ग्रामीण है। ऐसा स्वीकार करके ही चला जाता है। अतः होता यह है कि योजना में शुरू से ही खोट आ जाती है। जनकल्याण की सरिता नागरिकों के बीच खोकर रह जाती है और ग्राम की शुष्क भूमि पर आते आते उस में आचमन कर लेने भर को भी जल नहीं बचता।

तृतीय, राजनैतिक चिन्तन के इस नगरीकरण ने नागरीय "कम्पलैक्स" को जन्म दिया है जिससे नगर व ग्रामों के बीच बचे खुचे संवाद सूत्रों के भी छिन्न भिन्न हो जाने का खतरा पनप रहा है। इस कम्पलैक्स का क्या कारण है और सही मायनों में इस कम्पलैक्स की कितनी मात्रा है इसके बारे में विद्वानों की भिन्न भिन्न राय हो सकती है परन्तु इस कम्पलैक्स से नगर और ग्राम के बीच एक अवांछनीय खाई बन गई है। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकेगा। इस कम्पलैक्स से ग्राम के युवकों में एक हीन भावना घर कर गई है जो भारत की प्रगति के मार्ग में निश्चय ही बाधा है।

चतुर्थ बात पश्चिम की उस सभ्यता

व तहजीब की है जिसका नगर सीधे शिकार होते हैं और वहां से पश्चिमी सभ्यता की यह नकल अपने विकृत स्वरूप में ग्राम की ओर चलती है। ग्रामों में विवशतः इसे उस कम्पलैक्स के कारण अपनाया जाता है जिसका मैंने पहले जिक्र किया है। सभ्यता की इस नकल ने ग्रामीण जीवन की स्वच्छता, सादगी, पवित्रता, सुदृढ़ता, निश्छलता, अकृत्रिमता पर गहरा आघात किया है। नगर का जीवन शिष्टाचार के जिन वाहियात बन्धनों में घुट-घुट कर घिसट रहा है उसकी लपेट में जाने अनजाने ग्राम भी आ रहे हैं। भारत के गांवों के सन्दर्भ में यह स्थिति सचमुच शोचनीय एवं करुणा-जनक है।

पंचम, नागरीय जीवन में व्याप्त गहरे असन्तुलन ने ग्रामीण जीवन को भी उसकी धुरी से हिला कर रख दिया है। भारतीय संस्कृति का एक धवल पक्ष यह भी है कि इसने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में समन्वय स्थापित करके मानव को सन्तुलित किया है। परन्तु सघनता से विकसित हो रहे नगर केन्द्रों में अनेक प्रकार की परिस्थितियों के दबाव के कारण मानवजीवन अर्थप्रधान बन कर रह गया है। और धीरे-धीरे परि-वर्तन की यह हवा ग्रामों में भी फैल रही है। अर्थप्रधान होने की सबसे बड़ी हानि जीवन में से नैतिकता के ह्रास के रूप में होती है और ऐसा आज सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है।

और अन्तिम बात जिस की ओर मैं संकेत करना चाहूंगा वह यह कि अनादिकाल से भारत ग्राम प्रधान देश रहा है। अतः वर्तमान में भी सम्पूर्ण योजना का केन्द्र ग्राम होना चाहिए। ग्रामों की गणना प्राथमिक स्तर पर होनी चाहिए द्वितीय स्तर पर नहीं। यदि योजना ग्रामोन्मुख होगी तो व्यक्ति कभी भी नगरोन्मुख नहीं हो सकेगा। ग्रामीण युवा को व्यक्तित्व विकास के सम्पूर्ण साधन उपलब्ध हो सकें तो कम्पलैक्स स्वयमेव नष्ट हो जाएगा। ग्राम शुद्धि आज का तप है, आज का कर्म है।

मुकन्दपुर
जालन्धर (पंजाब)

भारत में परिवार नियोजन के आधारभूत सिद्धान्त

डा० कर्ण सिंह

आज देश के सामने मुख्य चुनौती गरीबी की समस्या है और प्रत्येक योजना या गतिविधि केवल तभी महत्व-पूर्ण समझी जाती है जब वह इस समस्या को हल करने में सहायक होती है। जन-संख्या और परिवार नियोजन के प्रश्न को इसी सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए।

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि हमारी जनसंख्या में भारी वृद्धि का मुख्य कारण गरीबी है, क्योंकि यह देखा गया है कि जब कभी भी लोगों के रहन-सहन का स्तर उठने लगता है तो जनसंख्या की वृद्धि में तेजी से कमी होती जाती है। इसलिए हम इस बात को नहीं मानते कि अधिक जनसंख्या हमारी देश की गरीबी का मुख्य कारण है।

किसी भी देश की जनसंख्या का आकार उसकी आर्थिक और सामाजिक स्थितियों, विशेषकर उत्पादन की अव-स्थाओं और आधुनिक टेक्नोलाजी के प्रयोग पर निर्भर करता है। इन तथ्यों को ध्यान में रखने से यह निर्विवाद हो जाता है कि वर्तमान अवस्था में भारत में जनसंख्या की वृद्धि की ऊंची दर देश के विकास पर बुरा प्रभाव डाल रही है।

आज की स्थिति में भारत द्वारा समृद्धि के मार्ग पर जाने में जनसंख्या सम्बन्धी योजना की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए परिवार नियोजन के प्रति अपनाए गए दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए कुछ आधारभूत बातों को विस्तार से बताना होगा। परिवार नियोजन के प्रति अपनाए गए वर्तमान दृष्टिकोण में तीन आधारभूत बातें हैं।

एक बार फिर यह दोहराना होगा कि परिवार नियोजन देश की सारी समस्याओं को हल करने का अचूक इलाज नहीं है, यह तो पंचवर्षीय योजना में निर्धनता के दुर्ग पर कड़ा प्रहार करने

के लिए उठाए गए कदमों में से एक है। वस्तुतः परिवार नियोजन वर्तमान महत्वपूर्ण समय में सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के प्रति अपनाए गये हमारे दृष्टिकोण का एक अंग होना चाहिए।

परिवार नियोजन कार्यक्रम को अब एक अलग कार्यक्रम के रूप में देखना सम्भव नहीं है। इस कार्यक्रम को देश के सम्पूर्ण स्वास्थ्य और पोषक आहार कार्यक्रमों के साथ मिलकर चलाया जाना है और इसकी पहुंच दूर-दूर के देहाती क्षेत्रों और शहर की गन्दी बस्तियों में रहने वाली हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या तक होनी चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पांचवी योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य, पोषण और परिवार नियोजन सेवाएं एक कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। इसको पूरा करने के लिए निस्सन्देह प्रशासन, प्रशिक्षण और संगठन की प्रक्रियाओं में मुख्य परिवर्तन करने होंगे। इस क्षेत्र में क्रान्तिकारी कदम उठाए बिना नए दृष्टिकोण को सफलता मिलने की आशा नहीं है।

स्वास्थ्य, पोषण और परिवार नियोजन सेवाओं का एकीकरण करने के साथ-साथ परिवार नियोजन कार्यक्रम को भारत सरकार के कार्यक्रम की जगह वास्तविक जन आन्दोलन के रूप में बदलना आवश्यक है। इसके लिए एक नई सोद्देश्य योजना बनानी होगी। इस योजना में परिवार नियोजन को प्रोत्साहन देने के लिए किसी भी व्यक्ति को दी जाने वाली धन-राशि को केवल उस न्यूनतम सीमा तक ही रखा जाना चाहिए, जिससे सम्बन्धित व्यक्ति की वेतन आदि की क्षतिपूर्ति की जा सके। लेकिन इस कार्यक्रम के शिक्षा सम्बन्धी पहलुओं का जनता में इस प्रकार प्रचार किया जाना चाहिए कि यह परिवार नियोजन कार्यक्रम सच्चे रूप में जनता के लिए सार्थक बन सके। यदि इस दिशा में वास्तविक प्रगति करनी है, तो राज्य सरकारों, पंचायतों सहित स्थानीय स्वयसेवी संस्थाओं एवं संगठित क्षेत्रों को इस कार्यक्रम में शामिल करना होगा।

पिछले दस वर्षों में परिवार नियोजन अभियान मे काफी सूझबूझ से काम लिया जा रहा है, फिर भी मुख्य रूप से अभिजात वर्गों और शहरी क्षेत्रों पर ही अधिक ध्यान दिया जा रहा है। पांचवी योजना में ग्रामीण क्षेत्रों पर अधिक ध्यान दिया जाएगा ताकि परिवार नियोजन समाज के कमजोर वर्ग के कल्याण के व्यापक कार्यक्रम का अग बन सके।

परिवार नियोजन के किसी भी कार्यक्रम में महिलाओं की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण है। इस बात को निश्चित करने के लिए कि परिवार सहित राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में स्त्रियों के साथ वास्तविक रूप में समानता का व्यवहार हो रहा है। हमारे संविधान में दिए गए आश्वासनों के अतिरिक्त सामाजिक, शैक्षिक और कानूनी उपाय भी करने होंगे। जनसख्या की वृद्धि की दर और स्त्रियों के समाज में स्थान पर तत्काल ही प्रभाव डालने के लिए एक कदम यह उठाया जा सकता है कि लड़कियों के लिए विवाह की उम्र कानूनी रूप से बढ़ाकर 18 वर्ष और लड़कों के लिए 21 वर्ष कर दी जाए और इस बात की भी व्यवस्था की जानी चाहिए कि कानून का दृढ़ता से पालन किया जाए। इससे नौकरी करने वाली स्त्रियों के हितों की भी रक्षा करनी होगी।

संयुक्त राष्ट्र 1974 को विश्व जनसंख्या वर्ष के रूप में मना रहा है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए, जहां लाखों लोग रहन-सहन के न्यूनतम स्तर से भी नीचे का जीवन बिता रहे है, विश्व जनसख्या वर्ष तभी कुछ महत्व का हो सकता है जबकि हम इसको उस गरीबी की बेड़ियों को तोड़ने के अपने प्रयत्नों का हिस्सा समझें जिसने सदियों से हमारे देश को जकड़ रखा है। विश्व के व्यापाक दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि इस भूमि पर समृद्धि और निर्धनता बहुत लम्बे समय तक साथ-साथ नहीं रह सकतीं और यदि जाति का कल्याण करना है तो इस शताब्दी के अन्त से पहले गरीबी को समाप्त करना आवश्यक होगा। □

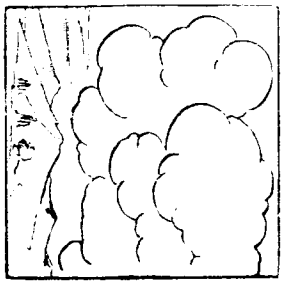

दहेज की प्रथा : एक अभिशाप

शशि वोहरा

भारतीय संस्कृति अपनी विविधता के इन्द्रधनुषी रंगों के कारण विश्व-भर में आकर्षण का केन्द्र रही है। भारतीय मनुष्य का जीवन जन्म से मृत्यु पर्यन्त भारतीय संस्कृति का ही एक अविच्छिन्न अंग है। पग-पग पर यहां का जीवन सांस्कृतिक धरातल की मांग करता है। किन्तु इस आकर्षक और सुविख्यात संस्कृति को कुछ कुरीतियां घुन की तरह दिन-दिन खोखला किए जा रही हैं। ये कुरीतियां भारतीय संस्कृति के लिए अभिशापवत् हैं जिनकी लपेट में आने पर मानव-जीवन चरमरा कर रह जाता है। दहेजप्रथा इनमें से सर्वाधिक घातक है। मन की खुशी के अनुसार कोई कितना भी दे दे किन्तु जहां लेन-देन बाध्यता या अनिवार्यता बन जाता है वहीं रीति कुरीति बन जाती है।

भारत प्रायः निम्न-मध्यमवर्ग का देश है, जहां जीवन-यापन की विकट समस्याएं मनुष्य का पीछा करते हुए उसे निरन्तर तोड़ती जाती हैं। इस पर भी यदि घर में बेटी हो तो व्यक्ति पर दिन-रात दहेज का भूत सवार रहता है। आवश्यकताओं को सीमित करके और इच्छाओं का दमन करके धन जुटाने के प्रयास में वह स्वयं किसी त्रासदी का अंश बन कर रह जाता है। शेष परिवार बेटी की चिन्ता के सम्मुख उपेक्षित हो जाता है और दहेज जुटाना ही उसका (पिता का) एकमात्र लक्ष्य बन जाता है। आज की कमर तोड़ मंहगाई के सम्मुख जब व्यक्ति दहेज की बड़ी-बड़ी मांगों को पूरा करने में स्वयं को असमर्थ पाता है तो विवश होकर उसे ऋण के भंवर में फंसना पड़ता है या वहां भी अपनी साख न बना पाने के कारण भ्रष्टाचार की राह पर बेहोश होकर चलने लगता है। अतः विवाह द्वारा बनने वाले जिस मधुर सम्बन्ध की बुनियाद ही इतनी पीड़ादायक और त्रासद होगी वहां उस पर बनने वाला (सम्बन्धों का) महल कैसे प्रिय हो सकता है? ऐसी विवशताओं में उचित-अनुचित तरीकों से दहेज के लिए धन एकत्र करने वाले पिता को नए सम्बन्धी सदैव आतंकित किए रहते हैं। ऐसे में दोनों परिवारों के बीच से स्नेह की सिक्ता चुकने लगती है। दिन-दिन घृणा और विद्वेष की दरार चौड़ी होती जाती है। यही पारिवारिक कलह-क्लेष का प्रमुख कारण भी बन जाता है।

सारा परिवार जिस बेटी के लिए चिंतित रहता है स्वयं उसकी स्थिति तो और भी अधिक दयनीय हो जाती है। सब दृष्टि से योग्य होने पर भी अधिक सम्पन्न न होने के कारण अपने योग्य घर और वर नहीं पा सकतीं। एक ओर उनके भावी जीवन सम्बन्धी सुख-स्वप्न धूल-धूसरित हो जाते हैं और दूसरी ओर वे माता-पिता की परेशानी के लिए भी स्वयं को दोषी पाती हैं। अनमेल विवाह इसी कुप्रथा का दुःखद परिणाम है। विवाहोपरान्त भी निम्नवर्ग की लड़कियां सुखद दाम्पत्य नहीं पा सकतीं क्योंकि दहेज को लेकर ससुराल वालों के ताने उसे दिन-रात बेचैन किए रहते हैं।

आधुनिक युग में आज जब नारी सर्वथा स्वतन्त्र और प्रगतिशील बन चुकी है, दहेज की शर्तें उसके प्रति सरासर अन्याय प्रतीत होती हैं। स्वतन्त्रता पूर्व की संकोचशील अबला नारी आज परम्परागत रुढ़िग्रस्त लक्ष्मण रेखाओं को लांघ कर देश-विदेश को पद्दलित कर रही है। पति उसके लिए आज परमेश्वर नहीं, अत्याचारी शासक भी नहीं बल्कि एक सहयोगी साथी है, जीवन की राह पर चलने वाला मित्र है। ऐसी विकसित और आत्मनिर्भर नारी के सन्दर्भ में दहेज की मांगें एक ओर भारतीय समाज को पिछड़ा हुआ सिद्ध करती हैं तो दूसरी ओर नारी को आक्रोश पूर्ण कुंठाएं सौंप जाती हैं। वस्तुतः पूर्वकाल में लड़कियां प्रायः अशिक्षित होती थीं जिन्हें शादी से पूर्व पिता अथवा भाई पर और शादी के उपरान्त पति तथा ससुराल वालों पर जीवन भर के लिए निर्भर रहना होता था। इसलिए ससुराल वाले शादी में अधिक से अधिक धन पाने की चाह रखते थे। परन्तु आजकल लड़कियां ससुराल में जाकर घर गृहस्थी के अतिरिक्त आर्थिक क्षेत्र में भी उनका हाथ बराबर बंटाने लगी हैं। ऐसे परिवर्तित सन्दर्भों में हमारी रीति प्रथाएं भी आज संशोधन की बड़ी मांग करती हैं।

परिस्थितिगत विषमता के कारण इस दानवी-प्रथा का आकार निन्तर भयंकर होता जा रहा है। तभी तो निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की बहुत सी लड़कियां अपने जीवन को जी नहीं पातीं। आर्थिक विपन्नता के कारण छोटे भाई-बहनों की जिम्मेवारी उठाने में लड़कियां मां-बाप की साझीदार बन जाती हैं। पारिवारिक कर्त्तव्यबोध और दहेज की मांगों के समक्ष अपनी असमर्थता के कारण कुछ जीवन-भर अविवाहित रहने का निश्चय कर लेती हैं और दुनिया की सरसताओं के प्रति उदासीन हो जाती हैं तथा कभी-कभी तो कुछ लड़कियां इस प्रकार की परेशानियों से घबराकर आत्मघात तक कर लेती हैं। ऐसी हृदय विदारक घटनाएं अक्सर देखने सुनने को मिल जाती हैं। दहेज प्रथा का घना कोहरा इन नन्हीं मासूम कलियों को खिलने से पूर्व ही नष्ट कर देता है। इसके लिए उत्तरदायी कौन है? और कोई नहीं केवल हम और आप ही तो हैं।

यद्यपि आज परिवार का पालन भी व्यक्ति के लिए बोझ बन चुका है किन्तु आश्चर्य होता है जब हम देखते हैं कि दहेज प्रथा दिन-दिन और अधिक बढ़ती जा रही है। इसके लिए सबसे पहले दोषी है उच्च वर्ग जो काले धन को किसी भी तरह से बाहर निकालना

चाहता है। अधिक दहेज उनके लिए सर्वाधिक सुगम और लाभकारी उपाय सिद्ध होता है क्योंकि इस नाजायज धन की कालिख दहेज की बड़ी बड़ी मूल्यवान् वस्तुओं की चकाचौंध के सम्मुख लुप्त हो जाती है और साथ ही इस चोरी के माल पर वे 'दानवीर' भी बन बैठते हैं। इस 'चोरी और सीनाजोरी' के बल पर ही तो ये समाज के अग्रगण्य बने हुए हैं। यहीं से दिग्भ्रमित होने लगता है बेचारा निम्न और मध्यवर्ग। उच्चवर्ग को देख कर उसकी इच्छाओं की सीमाएं भी अधिक विस्तृत होती जाती हैं परन्तु आर्थिक निर्बलता उसकी असमर्थता को बनाए रखती है। फिर भी मध्यवर्गीय परिवार, जो इज्जत और स्टेटस बनाए रखने में ही जीवन भर लगा रहता है, इसे होड़ में शामिल हो जाता है कि यदि पड़ोसी ने बेटी को विवाह में 'फ्रिज' दिया है तो मुझे उसके अतिरिक्त 'टी०वी० सैट' भी देना होगा। दुनिया को जीत कर बड़ा कहलाने के इस दम्भपूर्ण आडम्बर में आत्मतोष के लिए मनुष्य इन व्यर्थ के रीति-रिवाजों में जो पानी की तरह पैसा बहा रहा है, डर है कि कहीं वह स्वयं इस धारा में न बह जाए।

आज परिस्थितियों के चक्रव्यूह में अभिमन्यु बन कर हम सब इस संक्रान्तिकाल की विषमता को झेल रहे हैं। परम्परागत प्रथाएं आज के वातावरण में सर्वथा 'मिसफिट' होती जा रही है। ऐसे समय में कोई निदान ढूंढना ही होगा जिससे हम अपने को अपने परिवेश में से उखड़ने से बचाए रखें। दहेज प्रथा को दिन-दिन स्थापित और प्रतिष्ठापित करने वाले उच्च वर्ग से सर्वप्रथम यह निवेदन है कि वे काले धन की उपज बन्द कर दें ताकि उन्हें काला धन निकालने का यह (दहेज का) तरीका अपनाना ही न पड़े। उन्हें यह सोचना चाहिए कि एक तो अनुचित रूप से धन कमा कर वे अपराध करते हैं और उस धन का ऐसा प्रदर्शन करके वे पूरी सांस्कृतिक धारा को तथा पूरे समाज को दूषित करते हैं। इस अवसर पर जबकि दो मानव-हृदय जीवन भर के लिए पूर्णतः निःस्वार्थ भाव से एक दूसरे के प्रति अनुबन्धित और समर्पित होते हैं, ऐसी पवित्र वेला में ये व्यापारिक वार्ताएं समाप्त होनी चाहिए। व्यापार में सदैव स्वार्थ प्रमुख रहता है और दाम्पत्य जीवन में स्वार्थ ही सबसे बड़ी बाधा बन जाता है। अतः अपनी रीति-प्रथाओं को इन मिथ्याडम्बरों से, जो समाज को नित्य प्रति खोखला किए जा रही हैं, मुक्त करके पुनः सरलता और सादगी का बाना पहनाना होगा। हम सबको यह आदर्श बनाना चाहिए कि न तो लड़की की शादी में दहेज देंगे और न ही लड़के की शादी में दहेज लेंगे। तभी हम इस घातक कुरीति से स्वयं को उन्मुख कर पाएंगे अन्यथा यदि एक वर्ग खूब दहेज देता रहेगा तो पूरे समाज का सन्तुलन बिगड़ जाएगा और फिर वही होड़ शुरू हो जाएगी।

अन्तर्जातीय विवाह दहेज प्रथा के लिए सर्वोपरि प्रतिरोध सिद्ध हो सकता है। क्योंकि जाति-बन्धन के हटने से वर चुनने का दायरा अधिक विस्तृत हो जाता है। जाति से बाहर बहुत से ऐसे लड़के मिल जाते हैं जो योग्य होने पर भी दहेज की मांग नहीं करते। जाति-विभाजन आज सर्वथा निर्मूल सिद्ध हो चुका है। जाति के लिए तो कभी-कभी हम और बहुत कुछ खो देते हैं। अतः लड़की की सुख-सुविधा को ध्यान में रखते हुए आज जाति से पूर्व योग्यता को ध्यान में रखना चाहिए। कुछ मात्रा में अन्तर्जातीय विवाह होने लगे हैं परन्तु उनमें अभी वाञ्छित तीव्रता नहीं आ पाई है।

दहेज प्रथा के विरोध में आज सामुदायिक विवाह प्रथा अधिक सफल सिद्ध हुई है। यद्यपि कई सामाजिक अथवा धार्मिक संस्थाएं सामुदायिक विवाह प्रथा को आश्रय दे रही हैं परन्तु आटे में नमक के बराबर। ऐसे संशोधनों को हमें स्वयं शामिल होकर प्रोत्साहित करना होगा तभी सच्चे अर्थों में प्रगतिशील आधुनिक बन पाएंगे। अन्यथा ये क्रूर प्रथाएं तो हमारे पैरों की शक्ति खींच कर हमारे हाथों में निर्धनता की बैसाखियां जीवन भर के लिए सौंप जाएंगी।

बी-1 48 मालवीय नगर
नई दिल्ली।

राष्ट्रीय समृद्धि के लिए गांवों में सड़कें

सड़कों के निर्माण के साथ-साथ आर्थिक समृद्धि का दौर भी शुरू हो जाता है। इसलिए पांचवीं योजना के दौरान गांवों में सड़कों के विकास-कार्य को उच्च प्राथमिकता दी गई है। 'न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम' के अन्तर्गत सड़कों के निर्माण के लिए 500 करोड़ रु० की राशि निर्धारित की गई है। यह राशि राज्यों द्वारा सड़कों के निर्माण-कार्य पर लगाई जाने वाली धनराशि का 50 प्रतिशत है।

भारत के 32 लाख 76 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में 5 लाख 64 हजार गांव हैं। प्रत्येक गांव तक पहुंचने के लिए चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, सड़क बनाने का उद्देश्य है। गांवों के उत्थान और समृद्धि के लिए ऐसी सुविधा देना बहुत ही आवश्यक है। इससे कृषि-क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

भारत में सड़क विकास पर मुख्य इन्जीनियरों की रिपोर्ट (1961-68) के अनुसार विकसित क्षेत्र के सभी गांवों को कम से कम 24 किलोमीटर दूरी के अन्दर और अविकसित क्षेत्रों में सभी गांवों की 8 किलोमीटर के अन्दर सभी प्रकार की सड़कों की सुविधा देने के लिए 50 लाख 57 हजार किलोमीटर सड़कों का जाल बिछाना होगा। इस पर 5,200 करोड़ रु० खर्च आएगा। वर्तमान मूल्य दरों पर लागत और भी अधिक आने की सम्भावना है।

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत गांवों में सड़कें बिछाने के कार्यक्रम का उद्देश्य 1500 या उससे अधिक की जनसंख्या वाले गांवों को सड़कों से जोड़ना है। तटवर्ती, पहाड़ी और जनजातीय इलाकों में गांवों के समूह को ऐसी सड़कों से जोड़ना है जो सभी मौसम में चालू रहें। इस प्रक्रिया से 1500 से कम आबादी वाले बहुत से गांवों का सड़कों से सम्बन्ध स्थापित हो जाएगा।

इस बात को निश्चित करने के लिए कि ग्रामीण सड़क कार्यक्रम के अन्तर्गत अधिक से अधिक गांवों में सड़कें बनाई जाएं, सरकार ने राज्यों को परामर्श दिया है कि जो गांव राष्ट्रीय या राज्य राजमार्गों के 4-5 किलोमीटर के अन्तर्गत आते हैं, लेकिन प्रस्तावित ग्रामीण सड़कों के पास नहीं आते, उन्हें राष्ट्रीय या राज्य राजमार्गों के साथ सड़कें बनाकर जोड़ा जाए। राज्यों को इसी आधार पर सड़कों के जिलावार नक्शे बनाने को कहा गया है।

जो गांव सड़क बनाने के न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत नहीं आते उनके लिए राज्य सरकारें अतिरिक्त कार्यक्रमों के अन्तर्गत सड़कें बनाने की व्यवस्था करेंगी। इस प्रकार गांवों में न्यूनतम आवश्यक कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाले गांवों से कहीं अधिक गांव एक सड़क या दूसरी सड़क से जुड़कर देश के आर्थिक जीवन के अंश हो जाएंगे।

ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों के निर्माण की प्रगति उत्साहवर्द्धक रही है। चौथी पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण सड़कों के विकास पर विशेष महत्त्व दिया गया है और पहली बार इसके विकास के लिए अलग राशि निर्धारित की गई है। योजना में सुझाव दिया गया है कि सड़कों पर खर्च होने वाली कुल धनराशि का 25 प्रतिशत ग्रामीण सड़कों के निर्माण पर खर्च किया जाए। वास्तविक उपलब्धि मूल अनुमान से अधिक रही है। राज्यों में सड़कों के निर्माण पर होने वाली कुल धनराशि का औसतन 40 प्रतिशत ग्रामीण सड़कों के निर्माण पर लगा है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम और श्रमदान द्वारा गांवों में सड़क बनाने की दिशा में भी अच्छा काम हुआ है। अनुमान है कि 1952 से 1964 के बीच इन संगठनों के प्रयासों के परिणामस्वरूप गांवों में 2 लाख 98 हजार किलोमीटर सड़कों का निर्माण किया है।

गांवों में हरित क्रान्ति के आने से ग्रामीण क्षेत्र में सड़कों का महत्व और भी बढ़ गया है। कृषि उत्पादन को निकटतम मंडियों में जल्दी से पहुंचाना होता है, ताकि कृषक को अपने परिश्रम का फल मिल सके। भारतीय कृषि को आधुनिक बनाया जा रहा है। इसलिए खाद और कीटनाशक दवाओं की सप्लाई जरूरी बन गई है। इन आवश्यक वस्तुओं को फार्म तक पहुंचने के लिए सड़कों का होना बहुत आवश्यक है। ग्रामीण सड़कों की ओर ध्यान न देना एक तरह से भारतीय कृषि की उपेक्षा होगी, जिससे अन्त में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य और दूर हो जाएगा।

ग्रामों में समृद्धि आने के साथ-साथ किसान अच्छा जीवन व्यतीत करना चाहेंगे। उसे आधुनिक सुख-सुविधाओं, कपड़े की आवश्यकता होगी। मांग बढ़ने से सप्लाई बढ़ेगी और इससे बाजार का विस्तार होगा। गांवों में सप्ताह में एक बार लगने वाले बाजार नियमित रूप से प्रतिदिन खुलने लगेंगे। आर्थिक गतिविधियों के आरम्भ होने से पहले अच्छी सड़कों का होना जरूरी है।

अधिक से अधिक गांवों में बिजली के पहुंचने से लघु उद्योग भी पीछे नहीं रहेंगे। गांव में सबसे पहले आटे की चक्की खुलेगी। उसके बाद कृषि औजारों की मरम्मत के लिए वर्कशाप भी खुल सकता है। बुनाई का काम भी मशीनों से होने लग सकता है।

वैसे गांवों में बिजली के होने से पहले सड़कों का होना आवश्यक है। बिना अच्छी सड़कों के हरित क्रान्ति या ग्रामीण विद्युतीकरण के लाभ अधूरे रह जाएंगे। इन्हीं कारणों से पांचवीं योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत गांवों में सड़कों के निर्माण का कार्य भी शामिल किया गया है। □

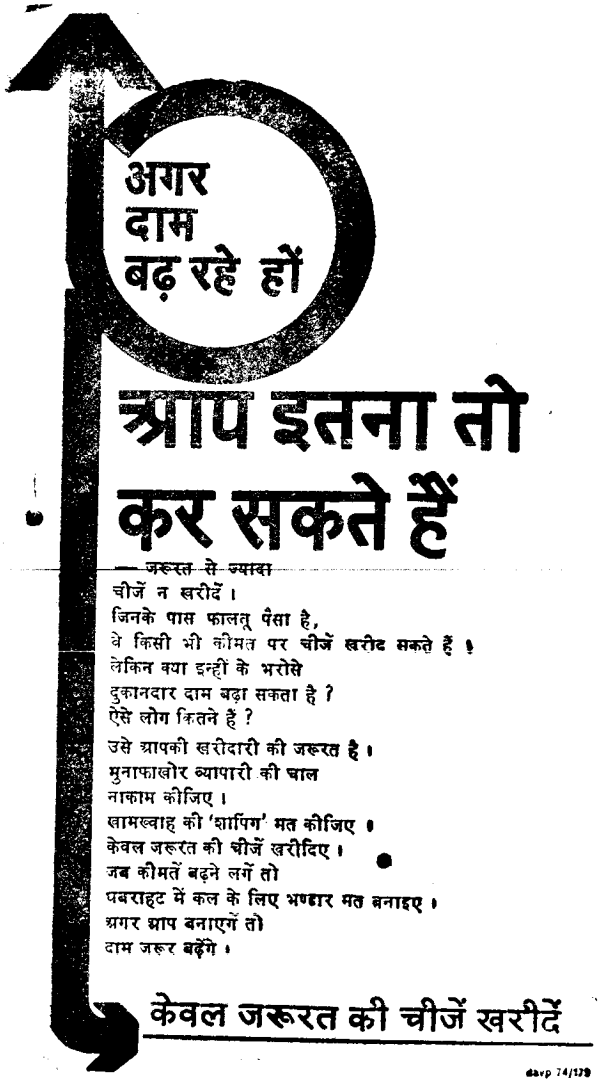

हिन्दी की अनुपम पत्रिकाएँ

आजकल

भारतीय कला, साहित्य और संस्कृति की मासिक पत्रिका

"आजकल" साहित्य, कला, नाटक फिल्म तथा अन्य ज्वलन्त विषयों की विभिन्न प्रवृत्तियों की एक स्पष्ट झांकी प्रस्तुत करता है।

भारतीय भाषाओं के साहित्य की गतिविधियों और देश में हो रहे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों से आपको अवगत कराता है।

समसामयिक समस्याओं को गम्भीरता से सोचने और समझने के लिए प्रेरित करता है।

एक प्रति :	७५ पैसे
वार्षिक :	८ रुपए
द्विवार्षिक :	१४ रुपए
त्रिवार्षिक :	२० रुपए

विशेष छूट

विद्यार्थियों, अध्यापकों (विद्यालय से प्रमाण-पत्र देने पर) एवं पुस्तकालयों को पत्रिकाओं के चन्दे पर 25 प्रतिशत की विशेष छूट।

हमारी पत्रिकाओं के ग्राहकों को हमारी पांच रुपए या अधिक मूल्य की पुस्तकें क्रय करने पर 20 प्रतिशत की छूट।

आज ही लिखें

व्यापार व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग

सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय,

पटियाला हाउस

नई दिल्ली-110001

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय—खण्ड इक्यावन

प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार; मूल्य : साढ़े सात रुपए; पृष्ठ : 536

यों तो आज जिस किसी काम के साथ 'सरकारी' विशेषण जुड़ जाए, समझ लीजिए, वह आम जनता की कटु आलोचना एवं भर्त्सना के बाड़े में घुस गया। आप देखिए तो सही, किसी भी भीड़ या क्यू को और तब सुनिए इन "विशेषणों" की छीछालेदार। पर सम्भवतः गांधी वाङ्मय पर होने वाले व्यय को कभी किसी ने कोसा नहीं, उल्टे जिसने देखा, उसे टटोला, फिर कुछ न कुछ अवश्य खोज निकाला और सराहे बिना न रहा। अब, क्यों सराहा—इस में खूबी गांधी जी की है या कि संकलनकर्त्ताओं के कार्य-कौशल की? यह प्रश्न विज्ञों के लिए अनबूझा नहीं।

भारत सरकार ने इन खण्डों को प्रकाशित कर एक पुनीत यज्ञ कर्म किया है। सत्साहित्य ही जाति-जीवन का मूल है, इसकी हम रक्षा न करें तो भारी भयंकर भूल है। चलिए, हम इस से तो बचे!

इक्यावनवें खण्ड में उस अवधि का लेखाजोखा तथा पत्र निहित हैं जब 1932 में ब्रिटिश सरकार ने दलित वर्गों के लिए पृथक् निर्वाचक-मण्डल के गठन का निर्णय किया और गांधी जी ने इस भयंकर षड्यन्त्र का भंडाफोड़ ही नहीं किया, अपितु इसे विफल बनाने के लिए प्राणों की बाजी लगा दी। क्या पता कि अगर अंग्रेज बहादुर अपनी चाल में सफल हो जाता तो भारत का रूप कुछ और ही होता और कौन कुछ कह सकता है कि भारत का क्षेत्रफल आज का भी एक तिहाई होता! पाकिस्तान जैसा सिरदर्द और भी होता।

गांधी जी ने दलित वर्गों को अपने से अविच्छिन्न रखने के लिए, जगह-जगह अपने पावन उद्देश्य तथा तदनुरूप बलिदान का उल्लेख किया है। श्रीमती सरोजिनी नायडू को एक पत्र में उन्होंने लिखा : "अस्पृश्यों के लिए अपने प्राणों की बलि चढ़ा देने का मेरा विचार कोई नया नहीं है।... लेकिन मन्त्रिपरिषद् का निर्णय खतरे का बिगुल साबित हुआ, जिसने मुझे गहरी निद्रा से जगा कर सूचित किया—यही वह समय है।" उन्होंने 'बा' से कहा, "करोड़ों में किसी-किसी को ही मांगी हुई मौत मिलती है।"

गीता के अनन्य भक्त गांधी जी हमेशा ही अपनी सभी महान् योजनाओं को भगवदर्पण करते थे, इसलिए रामेश्वरदास पोद्दार को वे लिखते हैं "अनशन मेरा नहीं, राम का है...यदि निष्फल हुआ तो निन्दा उसकी होगी, मेरी नहीं, सफल हुआ तो उसे स्तुति नहीं चाहिए।" (पृष्ठ 104)

गांधी जी अस्पृश्यता के बारे में कितने द्रवित, पीड़ित होकर सोचते थे इसका पता उनके इन शब्दों से लगता है, "अस्पृश्यों के प्रति अपने व्यवहार के लिए क्या हमें ईश्वर की ओर से भयंकर से भयंकर सजा नहीं मिलनी चाहिए?" एक जगह वे कहते हैं, "यह नहीं हो सकता कि मैं जीवित रहूं और अस्पृश्यता-निवारण के लिए काम न करूं।"

इतना ही नहीं, गांधी जी का दृष्टिकोण धर्मों के प्रति सम्भवतः किसी भी महान् दार्शनिक से अधिक युक्तिसंगत एवं ग्राह्य है। वे साम्प्रदायिक कट्टरता के घोर विरोधी थे और कहते थे "जो विनयी हैं और जिनका हृदय शुद्ध है उनके लिए तो वह लाखों करोड़ों मार्गों से प्राप्य है।..... बुद्धिमानों, मूर्खों, धर्मात्माओं और पापियों का एक ही ईश्वर है।"

एक ओर तो उनका ऐसा उदार दृष्टिकोण था और दूसरी ओर उपनिषद् के "तेन त्यक्तेन भुंजीथा" के अवतार थे वे! उन्होंने एक मित्र को लिखा था, "तुझे अपने शरीर को अपना नहीं मानना चाहिए। वह ईश्वर का है। ईश्वर ने कुछ समय के लिए दिया है, उसे स्वच्छ और स्वस्थ रखें ... तू उसका थातीदार है, स्वामी नहीं।"

गांधी जी कैसे विलक्षण तार्किक थे इसका नमूना देखिए इन पंक्तियों में : "तू स्वाधीनता का अर्थ भी नहीं समझती। अब तू अपनी इच्छा से बुजुर्गों को अपने पत्र दिखाती है तो ऐसा करके तू अपनी स्वाधीनता नहीं खोती, बल्कि अपनी सुरक्षा खोजती है। यदि कोई हमारी घर की देहली पर जमकर बैठ जाए तो वह कुर्क अमीन की तरह हमें अपनी स्वाधीनता से वंचित कर देगा पर यदि हम द्वारपाल रखें तो इससे हमारी स्वाधीनता नहीं जाती, बल्कि उसकी रक्षा होती है। इसी तरह यदि तू कच्ची उम्र में बड़ों को पहरेदार समझकर उनके सामने अपना दिल खोलेगी...तो तू पराधीन नहीं होगी।"

बुद्ध के बाद भारत की पुनीत वसुन्धरा पर शायद गांधी जी ही ऐसे महामानव थे जिन्होंने अपने हृदय की परिधि की सीमाएं तोड़ दी थीं और दीनबन्धु एन्ड्रयूज और एडमिरल स्लेड की सुपुत्री मीराबेन के पत्रों से उनकी अपरिसीम सहृदयता का परिचय मिलता है।

पुस्तक की छपाई व गेट-अप बहुत सुन्दर हैं। भाषा की शुद्धता व सफाई सराहनीय हैं। ये पत्र वस्तुतः भारत की ही नहीं, अपितु मानवता की थाती हैं।

ब्रजलाल उनियाल

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस—लेखक : श्री मन्मथनाथ गुप्त; प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार; मूल्य : डेढ़ रुपया।

प्रकाशन विभाग द्वारा "भारत के गौरव" ग्रन्थमाला के अन्तर्गत सुभाष चन्द्र बोस की जीवनी प्रकाशित करना सराहनीय है। श्री बोस उन महान् विभूतियों में थे जिन्होंने देश के स्वतन्त्रता संग्राम में अपना सर्वस्व होम दिया। परन्तु वह अमर शहीद अपने जीते-जी अपने सपने साकार होते न देख सका।

प्रस्तुत पुस्तक में सुभाष बोस की जीवनी का सजीव चित्रण किया गया है। देश के प्रति जितना प्रेम उनके मन में था लेखक ने पूरा-पूरा बखान किया है। देश हित में उन्होने अपना जीवन, परिवार, पार्टी और सभी कुछ न्यौछावर कर दिया। 1929 में उन्हें लगा कि कांग्रेस ठोस कार्य नहीं कर रही तो शीघ्र ही अपना रास्ता चुन लिया और 'इंडिपैंडेंस लीग' की स्थापना की। परन्तु जब पण्डित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में, कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की मांग रखी तो लीग को समाप्त कर फिर कांग्रेस में आ मिले। आजाद हिन्द फौज का नेतृत्व करते हुए भी सुभास बोस जापानी सरकार की कठपुतली न बन सके।

आलोच्य पुस्तक में, सुभाष बोस की जीवनी के सबसे विवादास्पद पहलू को लेखक ने बड़े सहज ढंग से छुआ है। विवाद के पक्ष-विपक्ष में गत कई वर्षों से दिए जा रहे तर्कों को एक ओर रख लेखक ने सुभाष बोस के मृत्युसम्बन्धी सन्देशों का बड़ा तर्कपूर्ण समाधान प्रस्तुत कर दिया है जो खटकता नहीं, सामान्य बुद्धि पर खरा उतरता है। अतएव प्रशंसनीय है।

पुस्तक की सरस भाषा और सरल प्रस्तुतीकरण के लिए लेखक को बधाई। मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् पाठक के मन में देशभक्ति की भावना अवश्य अंकुरित होगी।

मुद्रणकला की दृष्टि से पुस्तक पूर्ण है परन्तु नन्हे बालक 'मिस ओटन' जैसी अशुद्धि निगल न सकेंगे। फिर भी पुस्तक संग्रहणीय है।

सुभाष चन्द्र शर्मा

महाराष्ट्र—लेखक : श्री रा० टिकेकर; प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली; मूल्य : 3 रु०; पृष्ठ संख्या 80।

प्रस्तुत पुस्तक 'हमारे देश के राज्य' ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित सातवां ग्रन्थ है। इससे पूर्व सूचना और प्रसारण मन्त्रालय केरल, आन्ध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब पर पुस्तकें प्रकाशित कर चुका है। इन पुस्तकों का उद्देश्य भारत के विभिन्न राज्यों तथा अन्य क्षेत्रों के जनजीवन, संस्कृति तथा आर्थिक विकास के बारे में तथ्य उपस्थित करना है।

इस पुस्तक के प्रथम दो अध्यायों में महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति और रोमांचकारी इतिहास का वर्णन किया गया है। तीसरे और चौथे अध्यायों में वहां के कृषि तथा उद्योग-धन्धों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। पांचवें अध्याय में राज्य की परिवहन तथा संचार व्यवस्था का जिक्र है जबकि छठे, सातवें और आठवें अध्याय राज्य में उपलब्ध समाज सेवाओं, सांस्कृतिक दृश्यों और दर्शनीय स्थलों की झांकी प्रस्तुत करते हैं। पुस्तक के अन्त में महाराष्ट्र का एक मानचित्र भी दिया गया है।

पुस्तक की एक विशेषता यह है कि इसमें तथ्यपूर्ण सामग्री के साथ-साथ आंकड़े भी पर्याप्त संख्या में दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त, पुस्तक में कुछ चित्र भी दिए गए हैं जो वहां के जनजीवन और उद्योग धन्धों की विशेष झलक प्रस्तुत करते हैं। पूरी पुस्तक को पढ़कर लेखक का यह दर्शन ठीक ही लगता है कि महाराष्ट्र सम्पूर्ण भारत का एक लघु रूप सा प्रतीत होता है।

सामग्री तथा छपाई आदि कुल मिलाकर पुस्तक अत्यन्त सुन्दर व उपयोगी बन पड़ी है। आशा है जिस उद्देश्य को लेकर इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ है उसकी पूर्ति होगी।

सूर्यदत्त दुबे

"भगीरथ" पत्रिका—सम्पादक। श्री राधा कान्त भारती; प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001; पृष्ठ : 36; मूल्य : एक रुपया; वार्षिक शुल्क : 13.00 रुपए।

यह सिंचाई और विद्युत मंत्रालय की हिन्दी पत्रिका का प्रवेशांक है। जैसा कि सिंचाई और विद्युत मंत्री तथा उप-मंत्री के शुभ कामना सन्देशों और सम्पादकीय से स्पष्ट है, इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य हिन्दी भाषा भाषी लोगों को सिंचाई और विद्युत् क्षेत्र में हो रहे विकास और उससे सम्बद्ध विषयों की जानकारी देना है। इस रूप में प्रवेशांक में दी गई सामग्री का चयन सन्तुलित है। उपमंत्री प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद का लेख 'ग्राम विद्युतीकरण सहकारिताएं' देश में ग्राम विद्युतीकरण के क्षेत्र में विस्तार के आयामों का सूचक है।

सिंचाई और बिजली के अतिरिक्त प्रदूषण तथा गोबर गैस सम्बन्धी लेख देश की सामयिक एवं महत्वपूर्ण आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। समाचार वार्ता तथा छोटे पम्प सैटों के बारे में दी गई जानकारी से यह पत्रिका किसानों तथा कुटीर उद्योग धन्धों में लगे लोगों के बीच लोकप्रिय और उपयोगी सिद्ध होगी।

पत्रिका का मुख्य पृष्ठ एवं कलेवर आकर्षक है तथा इसमें दिए गए चित्रों से जटिल तकनीकी विषयों की अभिव्यक्ति भी सहज में हो जाती है। आज के वैज्ञानिक युग में यह पत्रिका एक ओर किसानों, उपभोक्ताओं उद्योगपतियों तथा दूसरी ओर इंजीनियरों और वैज्ञानिकों के बीच सम्पर्क का एक सशक्त माध्यम बनकर इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में अभाव की पूर्ति करेगी।

विश्वभूषण कृष्ण

कहानी

ओढ़ा हुआ दुख

बल्लभ डोभाल

बेटी के हाथ पीले कर चुकने के बाद हर कोई बाप यह महसूस करता है कि उसने एक भारी बोझ अपने सिर से उतार फेंका है। बड़ी धूमधाम के साथ यह बोझा अपने सिर से उतार कर दूसरे के सिर पर रख दिया जाता है। इस बोझ को सिर पर उठाए रखने में दूसरा आदमी किन तौर-तरीकों को काम में लाता है और कब तक, किस रूप में उसे सिर पर उठाए रखता है, तब ऐसी बातें सोचना बाप के लिए जरूरी नहीं, क्योंकि उसने दुनियादारी के कायदे कानून के मुताबिक लड़की को दूसरे के हाथ सौंपकर अपना काम पूरा कर लिया है। अब वह लड़की की तरफ से पैदा होने वाली चिन्ताओं से अपने को एक किनारे हुआ पाता है। लेकिन मूरतराम को हम किन्हीं चिन्ताओं से दूर हुआ नहीं देख पाते। बेटी का ब्याह कर चुकने के बाद भी वह एक साथ कई परेशानियों से घिर गया दीखता है। उसे इस तरह गुमसुम और पगलाया देख जोगीधर ने एकबार कुशल-क्षेम ही पूछी थी कि मूरतराम पके हुए फोड़े की तरह फूटकर बहने लगा।

'मेरी राजी-खुशी क्या पूछते हो कका। बेटी का गला अपने हाथों दवा देने वाला बाप कभी सुखी देखा है तुमने? आज तक जितने काम किए तुम्हारी दया से सब ठीक ही किए। लेकिन अब इस उमर में आकर इन हाथों ने वह काम कर दिखाया कि जो करना न था। अपनी बेटी की किस्मत को मैंने......।" इसके आगे मूरतराम कुछ बोल न सका।

कका जोगीधर कुछ समझ न सका कि वह क्या कहना चाहता है। लेकिन इस बात को वह जानता है कि बेटी की किस बात को लेकर वह अक्सर दुखी हो जाता है। बोला, "तुम पागल हो गए मूरतराम। कौन किसकी किसमत को बनाता-बिगाड़ता है? अरे भई, आदमी आदमी की किस्मत में फर्क है। जरा सोच-विचार करके देख। भाग्य की यह अनहोनी बातें हैं। किसे मालूम है कि कल क्या होगा? तेरे पड़ोस में रंगीली भाभी रहती है। क्या नाम है उसकी बेटी का?"

"मंजेश्वरी।" मूरतराम को उसका नाम याद था। मंजेश्वरी तो अब का नाम है भई, असल नाम उसका मूंजा था मूंजा। जब दिन आते हैं तो देख ले—मुंजा से बन गई मंजेश्वरी देवी। नाम भी चार हरंफ और बढ़ गया। कौन जानता था कि उस मकड़ी की किस्मत चमकते हुए सूरज को भी मात दे देगी। हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े शहरों में घूम आई है। पिछले वर्ष अफ्रीका गई और अभी न जाने कहां-कहां घूमेगी? तो भई, यह सब किस्मत-करनी की बात है। तेरी बेटी की किस्मत हुई तो वह भी......।"

कका जोगीधर की बात सुनकर मूरतराम का फोड़ा और भी तेजी से पिघलने लगा। मंजा की किस्मत पर वह मन ही मन कुढ़ने लगा। तभी उसकी आंखों में रंगीली भाभी का प्रसन्न बदन नाच उठा। वह कितनी खुश है, सिर्फ इस बात पर कि उसकी बेटी हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े शहरों में घूम आई है। इन गांवों में उसका आना अक्सर कम ही होता है। रंगीली भाभी का चेहरा एक तरह से बेटी की जिन्दगी का वह खुशनुमा शीशा है जिसमें मूरतराम जब कभी झांकता है तो उसे अपनी शकल गला घोंटने वाले टाप की सी नजर आती है।

पिछली बार जब मूरतराम ने बेटी के रिश्ते की बात चलाई तो रंगीली भाभी चेहरे को गम्भीरता से लीपती हुई बोली, "बेटा हो तो ऐसा जो बेटी को अपनी बगल में रख सके। ब्याह करके भी बेटी को सुख न मिला, गोठ का गोबर ही छानना पड़ा तो ब्याह किस काम का—?"

रंगीली भाभी की वह बात मूरतराम को दिन में दस बार याद आती है। साथ ही वह अपनी पड़ोसन रंगीली भाभी और उसकी बेटी के भाग्य पर मन ही मन खरोंच लगाता है। आखिर मूंजा का आदमी कौन सा इतना बड़ा नौकर है कि वह उसे हिन्दुस्तान से लेकर अफ्रीका तक के शहर घुमा लाता है। तभी एक दूसरी बात उसके मन में आती है। वह चाहे साहब का खानसामा ही क्यों न हो। मूंजा को लेकर अफ्रीका घूम आना मामूली बात नहीं है। गांव की बेटियां जो भाग्य वाली हैं वे इन गांवों को छोड़कर बड़े शहरों में आराम की जिन्दगी बसर कर रही हैं। तरह-तरह के खेल-तमाशे देखती हैं, नई-नई बातें सीख कर आती हैं। मूरतराम यही तो चाहता है कि उसकी बेटी लछमी भी गांव की दूसरी छोकरियों की तरह ब्याह होते ही शहर चली जाए। शादी के बाद वह उसे गांव में नहीं देखना चाहता। लेकिन सबकी किस्मत एक बराबर कहां होती है! लछमी का रिश्ता जिस घर में हुआ वह भरा-पूरा परिवार है। गांव के थोकदारों में इस घर का अपना ढंग ही निराला है। मूरतराम बेटी का गला घोंटने की बात करता तो है, पर सचमुच में देखा जाए तो वह इस रिश्तेदारी के काबिल बिलकुल था ही नहीं। सोचकर कका जोगीधर मन ही मन खीझता हुआ बोला ऐसे परिवार में बेटी देकर भी तू खुश नहीं मूरतराम तो यह बड़े ताज्जुब की बात है। आखिर तुझे वहां क्या कमी नजर आती है।

सब तरह लक्ष्मी को भगवान ने भरे-पूरे परिवार में भेजा है। लड़का पढ़ा है, लिखा है। इतनी बड़ी जमीन सम्भाले हुए है। इससे अच्छा और क्या चाहता है तू। अगर तेरे मन में बेटी के शहर जाने की बात है तो वह ठीक बात नहीं। शहर वो लोग जाएंगे जो घर के नंगे हैं, जिनके पास जगह जमीन नहीं। जो काम करना नहीं चाहते। लेकिन जिनके घर में ही सब कुछ है वे क्यों शहरों की खाक छानने फिरें? और अगर इससे ज्यादा तू कुछ सुनना ही चाहता है तो नाराजी न करना, इतना तुझसे कह दूं कि तुझ जैसे आदमी को वे लोग खरीद कर छोड़ दें। थोकदार साहब इतनी हस्ती रखते हैं।

कका जोगीधर की इस डंक मारने वाली बात पर मूरतराम की आंखें खुल गई। वह अपने होश सम्भालने लगा। जोगीधर कका ठीक ही कहते हैं, उसके थोकदार समधी ऐसी ही हस्ती के मालिक हैं। पर है तो होते रहें। उसे इससे क्या? उसके साथ तो धोखा हुआ है। थोकदार साहब ने धोखे से लड़के का ब्याह किया है। जब उनका समधी खुद अपने मुख से यह बात कहे तो दूसरों के कहने में क्या हर्ज है। कहने को सब कहते हैं कि धोखा है, लेकिन कोई बताए कि धोखा क्या था। थोकदार किसी को सताने वाला आदमी नहीं। उसकी मदद के हाथ काफी लम्बे-चंड़े हैं। इन हाथों ने दूसरों को दिया ही है, लिया कुछ भी नहीं। जमीन-जायदाद के मालिक हैं, बाग-बगीचे हैं। खेतों में काम करने वाले काश्तकारों का पूरा एक गांव बसाए हैं। खुद भी घर के छोटे-बड़े कामों में इस तरह उलझे रहते हैं कि उन्हें बुरा करने का सोचने की फुर्सत ही कहां है। फिर खास अपने समधी के साथ कैसा धोखा? लेकिन मूरतराम को धोखा ही लगता है।

कुछ समय के बाद रंगीली भाभी की बेटी मंजु अफ्रीका से लौटी। ससुराल में न जाने उसका कैसा स्वागत हुआ। लेकिन जब रंगीली भाभी के पास पहुंची तो रंगीली ने फूलों का हार पहना कर बेटी का स्वागत किया। इन दिनों रंगीली ने सारा गांव सिर पर उठा लिया। मंजु का अफ्रीका से लौट आना गांव भर के लिए एक बड़ी बात थी। गांव के लोग बारी-बारी रंगीली के घर आते-जाते हैं। मंजु की बातें सुनते हैं और उसके भाग्य के साथ रंगीली भाभी के काम की सराहना करते हैं। लड़की के लिए राजा बेटे की तालाश की है उसने। मंजु के लिए ससुराल नहीं, स्वर्ग सा घर ढूंढ निकाला है। अफ्रीका में भी वह दिनभर पलंग पर बैठी रहती थी और यहां भी रंगीली भाभी उसे जमीन पर पांव नहीं धरने देती। किस्मत हो तो ऐसी.....।

मायके आई हुई मंजु को मूरतराम ने जब पहली बार देखा तो उसके सीने में जोर की एक चसक उठ खड़ी हुई। लगभग सारे गांव की बहू-बेटियां हिन्दुस्तान के किसी न किसी शहर में रहकर आई हैं। उनमें कई ऐसी भी हैं जिन्होंने शादी के बाद गांव की शकल तक नही देखी। उन सबमें मंजु ही अकेली ऐसी है जो हिन्दुस्तान को छोड़ अफ्रीका तक जा पहुंची। मूंजा...वह मकड़ी सी लड़की—आज उसके चेहरे पर नजर नहीं जमती। तभी अपनी बेटी लछमी का पिघलाया सा चेहरा मूरतराम की आंखों में उभर आया और दुख के बोझ से दबी हुई सांसें खींचता मूरतराम रंगीली भाभी के घर से वापस लौट आया।

अगले दिन मूरतराम की घरवाली रंगीली के घर पहुंची। गांव की कुछ औरतें पहले से वहां बैठी मंजु से अफ्रीका की बातें सुन रही थीं। वह भी उनके बीच जा बैठी। देर तक उसकी बातें सुन लेने के बाद जब वह घर लौटने लगी तो मंजु ने लछमी के बारे में पूछ लिया। पूछने की देर थी कि मां की आंखें आंसुओं से भर आई। बोली—"तेरी जैसी किस्मत लेकर कहां आई है मेरी लछमी? उसे तो भगवान ने गोठ का गोबर छानने के लिए ही पैदा किया है बेटी।"

इतना कहकर वह चुप हो गई लेकिन उसकी बात को आगे बढ़ाती हुई रंगीली भाभी बोल पड़ी। "लड़का नौकरी-चाकरी करे तो बहू को तब तक अपने साथ न रखे जब तक नौकरी नहीं मिले। कहते तो हैं कि लड़का खूब पढ़ा-लिखा है, पर पढ़ा-लिखा होता तो घर की जमीन जोतता क्या? सुनते हैं दिनरात खेती के काम मे खपता रहता है। जहां बेटी को सुख न मिले ऐसे घर में रिश्ता करने के लिए कौन तैयार होता है? ब्याह के बाद बेटी को गांव में कौन देखना चाहता है? पर तेरे समधी निकले पूरे चालबाज। जब तेरी लक्ष्मी की बात चल रही थी तो तेरे समधी ने लड़के को फौरन दिल्ली भेज दिया और बोले कि लड़का रोजगार पर है।"

रंगीली भाभी की इन तमाम बातों के बावजूद भी मन हल्का हुआ जाता है। उधर समधी की चालाकियों का बन्द पिटारा खुलना शुरू हुआ और दूसरी ओर मंजु को मन ही मन लक्ष्मी के भाग्य पर ईर्ष्या होने लगी। वह मन ही मन अपने भाग्य को कोसने लगी। काश? उसे भी ऐसा ही घर मिला होता—ऐसा सब कुछ, जैसा कि लक्ष्मी को मिला है। लक्ष्मी की तरह उसकी भी अपनी जमीन जायदाद होती, बाग-बगीचे होते तो वह भी दर-दर भटकना छोड़ दिन रात अपने खेतों में काम करती।

636, अलीगंज
नई दिल्ली-3

पहला सुख निरोगी काया

वर्षा के मौसम में स्वास्थ्य रक्षा

डा० युद्धवीर सिंह

मौसम बरसात का चल रहा है। कहा है कि जिस तरह सर्दी का मौसम स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम है उसी तरह बरसात के महीने स्वास्थ्य के लिए खराब महीने हैं। कारण यह है कि इन दिनों हवा में नमी रहती है, कीचड़ पानी सब जगह रहता है, मच्छर मक्खी का जोर होता है, हर प्रकार के कीड़े-मकोड़े अधिक पैदा होते हैं। दूसरे शरीर के अन्दर पित्त प्रकुपित हो जाता है। हाजमा कमजोर हो जाता है। गर्मी या जाड़े में जितना आदमी चल फिर लेता है उतना चलना फिरना वर्षा के कारण नहीं होता। आपने देखा होगा कि धूप में बाजारों में चहल पहल में कमी नहीं होती मगर जरा बौछाड़ पड़ जाए तो बाजार सूने हो जाते हैं। खाने-पीने की चीजें हवा में नमी के कारण जल्द खराब हो जाती हैं। आपने देखा होगा जाड़े में दाल सब्जी व रोटी रात की पकी हुई दूसरे दिन तक काम आती हैं मगर बरसात में वह सुबह ही बुस जाती है उसमें बदबू आने लगती है।

इन सब कारणों से बरसात में स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए कुछ नियम पालन करने जरूरी हैं, क्योंकि रोग होने पर उसका इलाज करने से बेहतर यह है कि रोग होने न दिया जाए। सबसे पहले तो हमें मच्छरों व मक्खियों से बचना चाहिए। मच्छर जाड़ा बुखार अथवा **मलेरिया** पैदा करते हैं और मक्खियां हैजा। मच्छर खड़े पानी में अण्डे देते हैं तो आप अपने घर व आस-पास, गली रास्ते व गांव में पानी जमा न होने दें, उसे बह जाने दें। यह बहुत जरूरी है। यदि कहीं पानी खड़ा हो भी गया हो तो उसमें डी०डी०टी० या मिट्टी का तेल डाल दें जिससे मच्छरों के अण्डे नष्ट हो जाएं। फिर भी अगर कहीं मच्छरों का जोर हो ही जाए तो सोते समय हल्की चादर ओढ़ लें—मसहरी लगा सकें तो अच्छा है। सोते समय जो शरीर का हिस्सा खुला रहे उस पर कड़वा तेल चुपड़ लें तो मच्छर काटेंगे नहीं। तुलसी के पौधे मच्छरों को भगाते हैं। आप अपने आंगन में तुलसी जरूर लगाएं। तुलसी के और भी बहुत गुण हैं। इसके पत्तों की चाय बनाकर पीने से सर्दी जुकाम से बचत होती है। गुर्दों को साफ करती व ताकत देती है। साधारण ज्वर को दूर करती है।

दूसरा भयंकर रोग इस मौसम का हैजा है। यह मक्खियों से फैलता है। मक्खियां कूड़ा कर्कट गन्दगी पर बैठकर फिर हमारे खाने के पदार्थों पर बैठती हैं और अपने साथ रोग के कीटाणु लाती हैं जो हमारे पेट में जाकर कै, दस्त पैदा कर देते हैं। इसलिए इन दिनों बाजार में खुले रखे कटे हुए फल तरबूज आदि या खुली रखी हुई मिठाई नहीं खरीदनी चाहिए। बासी सड़ा बुसा खाना नहीं खाना चाहिए। इस मौसम में आप कभी भर पेट न खाएं, थोड़ी भूख रखना अच्छा है। जरा सी भी पेट में गड़बड़ हो तो खाना छोड़ दें। नींबू इस मौसम का बड़ा बढ़िया फल है। पित्त प्रकोप को नष्ट करता है। इसका सेवन खूब करना चाहिए। अदरक, नींबू, प्याज तीनों का सेवन बहुत लाभदायक है। काली मिर्च व नमक के साथ खाने से लाभ चौगुना होता है। शिकंजवी पीना भी अच्छा है। अर्क कपूर इस मौसम की अच्छी दवा है। हर घर में एक शीशी रखें, कभी जरा सी पेट में गड़बड़ हो तो दो तीन बूंद चीनी पर डाल कर खा लें। बहुत फायदा करती है। दाल सब्जी में अदरक व सोंठ का सेवन इस मौसम में विशेषतया करें।

इनके अलावा, इस मौसम में भीग जाने से भी कुछ रोग हो जाते हैं। न भी भीगें हों तो भी बरसाती हवा से ही कुछ रोग हो जाते हैं। **डलकामारा** 6 या 30 नामी होमियोपैथिक दवा इस मौसम की खास है। बरसाती हवा से या भीग जाने से यदि बदन में दर्द, हल्का ज्वर, कानों में दर्द, गर्दन अकड़ जाना, कमर में दर्द, दस्त, जुकाम, खांसी, बदन टूटना आदि लक्षण हों तो इसकी दो तीन मात्रा दिन भर में लेने से आराम मिलेगा।

इस मौसम की दूसरी दवा **नेट्रम सल्फ** 6× है। खांसी, मुंह का कड़वा स्वाद, बदन टूटना आदि ऊपर लिखे लक्षणों में इसकी 4/5 टिकियां आधा कप गर्म पानी में डाल कर दिन में दो या तीन दफा पीने से लाभ होता है। इस मौसम के इनफ्लुएंजा की ये बढ़िया दवा हैं। काली मिर्च का प्रयोग किसी न किसी रूप में बरसात में शरीर को स्वस्थ रखता है। इस मौसम में अधिक चिकने व तले हुए पदार्थ नहीं खाने चाहिएं। चने का सेवन उपयोगी है। गांव की कहावत है :—

यद्यपि पसीना इस मौसम में परेशान करता है और वर्षा के कारण कम चला फिरा जाता है फिर भी जब भी मौका मिले खुली हवा में जितना घूम सकें अच्छा है, पसीने आएं तो तुरन्त पोंछ डालें। एकदम ठण्डा पानी न पीएं तथा स्नान भी थोड़ा ठहर कर करें। इन उपायों से बरसात का मौसम हमें कष्ट-दायक सिद्ध न होगा और हम अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकेंगे। □

मलेरिया से सावधान

□ राजवैद्य श्रीधर शर्मा

यह रोग विशेषकर ज्यादा वर्षा होने के कारण होता है। जब बारिश का पानी शहरों और गांवों के चारों तरफ निचाई अथवा गड्ढों में जमा हो जाता है और सड़ने लगता है तो उसमें अनेक तरह के कीड़े मकोड़े पैदा होते रहते हैं। मगर, इन दिनों विशेषकर मच्छर अधिक पैदा होते हैं। मलेरिया एक खास किस्म के मच्छर के काटने से पैदा होती है। इन मच्छरों को 'एनाफलीन' कहते हैं। इनके काटने से 12 घण्टे के बाद शरीर टूटने लगता है और बड़े जोर के साथ सरदी लगकर बुखार आता है। सरदी इतनी ज्यादा लगती है कि दो-दो लिहाफ, कम्बल और अनेक घर के कपड़े ओढ़ने पर भी जाड़ा कम नहीं होता। बाद में दो तीन घण्टे बाद जाड़ा कम होता जाता है मगर शरीर का तापमान बढ़ता जाता है। यहां तक कि 102 डिग्री से 105-व 106 तक हो जाता है। साथ में उल्टी, बेचनी हड़कल, तीव्र सिर शूल, हाथ पांवों का फटना, घबराहट आदि लक्षण होते हैं। इसे इकतरा, द्वतीया, तिगाणी, चौथैया या जूड़ी के नाम से भी पुकारते हैं। ज्वर की तेजी करीब 3 घंटे बाद पसीना आकर कम होती चली जाती है और बुखार उतर जाता है।

बचने के उपाय

जिन स्थानों में पानी भरा होता है, वहां मिट्टी का तेल, पैट्रोल, चूना, डी.डी.टी. का चूर्ण छिड़कवाना चाहिए। जिन तालाबों और कुओं में पानी सड़ रहा हो—उन में कीड़े मारने की लाल दवाई डालकर सफाई करानी चाहिए। वर्षा के दिनों में इसी लाल पानी के घोल से बर्तन धोने चाहिए। जो सब्जी बाहर से लाई जाए वह भी पुटाश के पानी से धोनी जाहिए। बरसात के दिनों में मसैहरी लगाकर सोना चाहिए। तेल की मालिश करनी चाहिए। पलंग से दूर पानी चौड़े बर्तन में भरकर मिट्टी का तेल डाल कर रखदें। मच्छर उसी में आकर इकट्ठे होकर मर जाएंगे।

चिकित्सा

आयुर्वेदिक औषधियों के अनुसार शीत मंजरी, महाज्वरांकुश, गोदन्ती, गुलाबी फिटकरी इनमें से किसी भी दवाई को ज्वर चढ़ने से पहिले दो-दो रत्ती की मात्रा दिन में दो बार देना चाहिए। एलोपैथी चिकित्सा में कुनेन का विशेष प्रयोग देखा गया है। इसके इन्जैक्शन भी लगाए जा सकते हैं।

इस बीमारी की वजह से जिगर-तिल्ली, पीलिया, खून की कमी तथा कमजोरी ज्यादा हो जाती है। इसलिए द्राक्षासव, कुमारी आसव तथा लोहासव के प्रयोग उम्र के माफिक मात्रा में देकर करना चाहिए। नवायसलोह को शंख भस्म तथा प्रवाल भस्म के साथ दो-दो रत्ती की मात्रा शहद में चटावें।

पथ्य :-मलेरिया ज्वर में ज्यादातर अन्न न देकर दूध या फलों का रस देना चाहिए।

अनार, मौसमी, नीबू चूसना चाहिए। छोटी पीपल दूध में डालकर छीरपाक बनाकर देना चाहिए। नीबू में सैंधानमक तथा काली मिर्च डालकर चूसना चाहिए। बाद में ज्वर कम होने पर मूंग की दाल, दलिया तथा सब्जियों के साथ रोटी भी दी जा सकती है।

फलोत्पादन उद्योग में ब्रिटिश अनुसन्धान से लाभ

एक वरिष्ठ भारतीय उद्यान-वैज्ञानिक के अनुसार ब्रिटिश वैज्ञानिकों द्वारा किए जा रहे अनुसन्धान से भारत के फलोत्पादन उद्योग को लाभ होने की सम्भावना है।

श्री एस० एल० कटयाल, भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली, के सहायक महा-निदेशक, ने एक भेंट में कहा कि वे फलोत्पादन की ताजा विधियों का बड़े निकट से अध्ययन कर रहे हैं। ये विधियां एक ब्रिटिश विश्वविद्यालय में विकसित की जा रही हैं।

लांग ऐश्टन अनुसन्धान स्टेशन को देखने के बाद श्री कटयाल ने कहा कि उन्होंने वहां जो कुछ देखा उससे वे बड़े प्रभावित हुए हैं। "मुझे पूर्ण विश्वास है कि यहां अपनाई जा रहा कुछेक अनुसन्धान विधियों को भारत में फलोत्पादन उद्योग में लागू किया जा सकता है।"

लांग ऐश्टन का अनुसन्धान स्टेशन अपने सेब के वृक्षों के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है। ये वृक्ष एक गज से कुछ ही ऊंचे हैं जिनमें सेब के गुच्छे लटके दिखाई देते हैं। ये पेड़ टमाटर के पौधों जैसे ही लगते हैं।

यदि इनको एक फुट की दूरी पर लगाया जाए तो एक एकड़ में लगभग 30 हज़ार ऐसे वृक्ष लगाए जा सकते हैं। इसके फल स्वाद में अन्य सेबों से यदि बेहतर नहीं तो उस जैसे ही होते हैं।

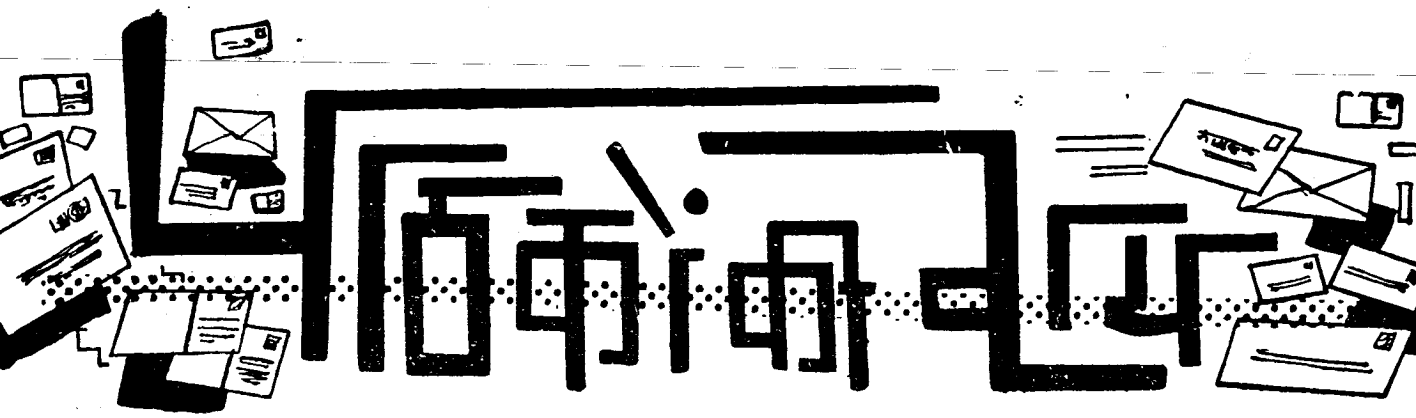

सहकारी आन्दोलन जनता का कैसे बने ?

दुर्गाशंकर त्रिवेदी

सहकारिता द्वारा ही देश में समाजवादी समाज रचना हो सकेगी ; सहकारिता ही हमारे अर्थतन्त्र को व्यवस्थित गति दे सकेगी.....आदि न जाने कितने लच्छेदार वक्तव्य सहकारिता को लेकर दिए जाते हैं। लेकिन एक लम्बे अन्तराल से पनप रहा आन्दोलन अभी तक भी सही अर्थों में जनता का आन्दोलन नहीं बन पाया। सामान्य जनता आज भी सहकारी आन्दोलन को सरकारी आन्दोलन की दृष्टि से ही देखती है।

हम अभी तक भी इस आन्दोलन को जनता का आन्दोलन क्यों नहीं बना पाए ? यह आन्दोलन हमारे जन-जीवन में आस्थाओं से क्यों एकाकार नहीं कर पाया ? ऐसे कितने ही जलते प्रश्न शूल हर उस व्यक्ति की छाती में चुभते ही हैं जो कि सहकारिता को कल्पवृक्ष मानता है। मैं भी इसी ऊहापोह में जीता जन-जिज्ञासाओं में उलझा रहा। कुछ लोगों से मिला और उनकी व्यथा कथा इन पंक्तियों में उजागर की। बहुत सम्भव है और भी कारण हों, पर ये भी कुछ सोचने, समझने, और नई राह दिखाने का वातावरण तो बना ही सकते हैं। इनको मद्दे नजर रखकर देश के सहकारी आन्दोलन पर एक विहंगम दृष्टिपात भी किया ही जा सकता है। लीजिए, विभिन्न तबकों के कुछ युवा सहकर्मियों के विचार जानिए, और सहकारी आन्दोलन का कायाकल्प करने का प्रयत्न कीजिए।

दलदल से निकालो

वेद के संगठन सूक्त की ऋचा का पद्यानुवाद गुनगुनाते श्री बशीर अहमद मयूख जब मेरे दफ्तर में तशरीफ लाए तब मैं सहकारिता के इसी काले पक्ष पर चिन्तन कर रहा था। अपनी व्यथा मैंने इस किसान कवि के समक्ष रक्खी तो वे बोले :—"जब तक सहकारी आन्दोलन राजनीति के सड़े कीचड़ में फंसा रहेगा स्थिति में बदलाव तेजी से नहीं आ पाएगा। मैं स्वयं खाद, बीज और कृषि के लिए ऋण स्वीकृत करवाने के कई मामलों में इस दुष्प्रवृत्ति का भुक्तभोगी हूं। राजनीति के अखाड़लियों का शिकार होकर आम आदमी सहकारिता से कतराने लगा है। यह सही है कि व्यवस्था इस देश को फिर से सोने की चिड़िया बनाकर रख सकती है। किन्तु तभी जब वह जन-मानस की लाड़ली बनने के लिए राजनीति की मृगमरीचिका से अपना पिण्ड छुड़ाए।" सालपुर चिला कोटा के युवा किसान, वैदिक वाङ्मय के पद्यानुवादक श्री बशीर अहमद मयूख ने इसी सन्दर्भ में कई संस्मरण सुनाए जो यह बतलाने में सक्षम हैं कि यह आन्दोलन आज सिर्फ राजनीति के हथकण्डेबाजों की गोद में ही चला गया है। जब तक इसे जन-मानस का प्यार नहीं मिल पाएगा, बात जरा भी आगे नहीं खिसक सकेगी।

भदाना (कोटा) के सहकारी नेता, जो सैण्ट्रल कोआपरेटिव बैंक कोटा के अध्यक्ष भी रह चुके हैं, से इस सन्दर्भ में बात चली तो उन्होंने सारा दोष नौकरशाही पर मढ़ दिया। उनका दृष्टिकोण था कि सहकारी आन्दोलन कर्मचारियों के बलबूते पर ही हमारे राजनीतिज्ञ चलाना चाहते हैं, जो गलत भी हैं और आन्दोलन के लिए जहर का काम भी कर रहा है।

सुझावों पर मैंने जब उनका ध्यान केन्द्रित किया तो उन्होंने सहकारी कानून को पेचीदगियों से मुक्त करके जनता तक आन्दोलन के तथ्य पहुंचाने की आवश्यकता पर जोर दिया। ग्राम सेवा सहकारी समितियों के जरिए यदि ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति की पहल ईमानदारी से क्रियान्वित की जाएगी तो हालात बड़ी तेजी से सुधरेंगे। उन्होंने बतलाया कि हाड़ौती अंचल में आन्दोलन इस दिशा में काफी सक्रिय है और ग्राम सेवा समितियां मजबूत हो रही हैं। मैं इसे आन्दोलन की जड़ें जमाने का भगरीथ प्रयत्न ही मानता हूं।

शुद्धीकरण

सहकारी समस्याओं को गहराई से पकड़ने वाले युवा लेखक प्रोफेसर नरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी (गवर्नमेण्ट कालेज झालावाड़) से इस सन्दर्भ में बात चली तो उन्होंने आन्दोलन में आमूल परिवर्तन की

आवश्यकतापर जोर देकर कहा कि जब तक इस जर्जर काया में नया रक्त नहीं दिया जाएगा, सहकारिता का वृक्ष लहलहाएगा नहीं।

उन्होंने अनेक समितियों में व्याप्त भ्रष्टाचार की सुर्खियों की ओर मेरे ही अखबार की खबरों पर मेरा ध्यान खींचते हुए कहा कि यदि ऐसे ही घुन आन्दोलन की जड़ें खाते रहेंगे तो फिर क्या उम्मीद करनी चाहिए कि स्थिति सुधरेगी? उन्होंने हर स्तर पर शुद्धीकरण की आवश्यकता तथा जन आवश्यकताओं के लिए सहकारिता अपनाने पर जोर दिया।

अनास्था

राजस्थान स्टेट कोआपरेटिव बैंक जयपुर के उपाध्यक्ष तथा नगरपालिका रामगंजमण्डी के अध्यक्ष श्री गोविन्दलाल गुप्ता, जो इस अंचल के पुराने सहकारी नेता हैं, से बात चली तो उन्होंने सहकारिता के प्रति लोगों में तेजी से बढ़ती जा रही अनास्था के वातावरण की समाप्ति पर जोर दिया। उन्होंने टारगेट (लक्ष्य पूर्ति) पर भी कड़ी निगाहें रखने की आवश्यकता पर सोदाहरण वार्ता की और ऐसी प्रवृत्तियों को रोकने की आवश्यकता बतलाई। क्योंकि जिस समिति की जरूरत जनता को नहीं होगी वह उसे पुष्पित-फलित करने का प्रयत्न भी क्यों कर करेगी? उनका कहना था कि जनता की मांग पर जो समितियां बनीं उनकी प्रगति सन्तोषजनक है और भ्रष्टाचार भी उनमें काफी कम है।

स्कूलों से शुरूआत हो

लाखेट के युवा समाजसेवी नाथूलाल यादव ने सहकारी आन्दोलन की सफलता के लिए स्कूलों में सहकारी समितियों के गठन और संचालन पर जोर दिया।

लोगों में जब बचपन से ही सहकारी सिद्धान्तों के प्रति रुचि होगी तो आन्दोलन जरूर जमेगा। अभी जो समितियां चल रही हैं उनमें भ्रष्टाचार, नौकरशाही और अकर्मण्यता का बोलबाला है जिस पर रोक लगाना जरूरी है।

प्रचार व्यवस्थित हो

"आन्दोलन की जड़ें मजबूत करने के लिए प्रचार के विभिन्न भाषाओं के माध्यम से प्रयत्न होने चाहिए।" —यह शिवपुरी (मध्य प्रदेश) के श्री चुन्नीलाल सलूजा ने बतलाया। उनकी धारणा है कि जनता में सहकारी सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार नहीं है। सहकारी पत्रकारिता की भी देश में बड़ी कमी है। अधिकांश समाचार पत्रों में सहकारी आन्दोलन के उज्ज्वल पक्ष को कम और अन्धेरे पक्ष को अधिक कवरेज मिलता है। प्रचार की कमी और भ्रष्टाचार के निरंकुश होने से भी आन्दोलन को बड़ा जोरदार धक्का लगा है। जरूरत है नौकरशाही के हाथों से निकलकर आम आदमी इसे अपनी एक आवश्यक जरूरत समझे। यह स्थिति लानी ही होगी। अन्यथा आन्दोलन सिर्फ नारेबाजी बन कर ही रह जाएगा।

स्वस्थ प्रशासन

कनवास (जिला कोटा) के एक युवक पुष्प चन्द्र शर्मा ने सहकारी आन्दोलन में जनरुचि नहीं पनपने का कारण सड़ी गली नौकरशाही प्रवृत्तियां और तेजी से पनपता भ्रष्टाचार बतलाया। उसका मत था कि यदि सहकारी आन्दोलन को तेजी से गति देना ही है तो स्वस्थ प्रशासन व्यवस्था उभारना आवश्यक है, क्योंकि अभी जो व्यवस्था है उसमें नौकरशाही हावी है और वह इसे सिर्फ सरकारी आन्दोलन बनाए रखने में ही सार्थकता अनुभव करती है।

इस प्रकार यह तथ्य उभरकर सामने आया कि लोग सहकारी आन्दोलन को सही अर्थों में जन आन्दोलन बनाने की दिशा में सोचते अवश्य हैं। समस्या को विभिन्न पहलुओं से देख परखकर ही उसका सही इलाज किया जा सकता है। हमें इस सन्दर्भ में कुछ व्यावहारिक कदम उठाना ही चाहिए ताकि सहकारी आन्दोलन के माध्यम से देश में आर्थिक क्रान्ति लाई जा सके और समाजवादी समाज रचना का लक्ष्य पूरा हो सके।

प्रबन्ध सम्पादक—दैनिक सोशलिस्ट समाचार मकबरा बाजार, कोटा-324006

क्या आप जानते है ?

मछलियों के उत्पादन में वृद्धि

*1973-74 में मछलियों का कुल उत्पादन बढ़कर 22 लाख टन तक पहुंच गया जबकि 1968-69 में यह उत्पादन लगभग 17 लाख टन था।

*समुद्र से मछली उत्पादन बढ़कर 15 लाख टन से अधिक हो गया जबकि 1968-69 में यह 11 लाख 50 हजार टन था।

*नदियों और तालाबों से मछली का उत्पादन बढ़कर 7 लाख 85 हजार टन हो गया जबकि 1968-69 में यह 6 लाख 20 हजार टन था।

*समुद्री उत्पादों के निर्यात में भी वृद्धि हुई है। 1972-73 में 38,903 टन मछलियों का निर्यात हुआ था जबकि 1973-74 में 48 हजार टन का निर्यात हुआ।

*मशीनों से युक्त नौकाओं से मछलियां पकड़ने के तरीकों को लोकप्रिय बनाने के लिए नए-नए तरीके निकाले जा रहे हैं।

*इस समय देश में मशीनों से युक्त 12 हजार यन्त्रीकृत नौकाएं हैं और इस प्रकार की 700 अतिरिक्त नौकाएं जुटाई जा रही हैं।

केन्द्र के समाचार

फसल प्रतियोगिता

मध्य प्रदेश के बेतूल जिले के किसान श्री साहेबलाल ने 1973-74 की रबी फसल में प्रति हैक्टेयर 14 हजार किलोग्राम गेहूं की फसल प्राप्त की। इस प्रकार उन्हें अखिल भारतीय फसल प्रतियोगिता में 3 हजार रु० का प्रथम पुरस्कार और कृषि पण्डित का प्रमाणपत्र मिलेगा।

श्री साहेब लाल द्वारा प्राप्त फसल 1,380 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर औसतन राष्ट्रीय पैदावार से 10 गुना है और पंजाब और हरियाणा की औसतन पैदावार से छः गुना अधिक है।

दूसरा स्थान भी मध्य प्रदेश के भूमानी दीन चौरसिया को मिला। वे जिला छतरपुर के हैं और इन्होंने प्रति हैक्टेयर 13,252.29 किलोग्राम गेहूं पैदा किया। श्री चौरसिया को 1200 रुपये इनाम मिलेगा।

8 सौ रुपए का तीसरा पुरस्कार श्री गजामल तुलसी राम को मिलेगा। यह महाराष्ट्र के धुलिया जिले के हैं और इन्होंने प्रति हैक्टेयर 12,436 किलोग्राम की फसल प्राप्त की।

बुनकरों को सूत

वाणिज्य मन्त्री, प्रो० देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय ने बताया कि हथकरघा क्षेत्र को धागे की सप्लाई बढ़ाने और सप्लाई बनाए रखने के लिए कदम उठाए जा रहे हैं।

उन्होंने बताया कि चौथी पंचवर्षीय योजना में 36 लाख से भी अधिक स्पिण्डलों के लिए लाइसेंस दिए गए थे तथा चालू योजना के दौरान भी इतने ही लाइसेंस देने की आशा है। नई लाइसेंस प्रणाली की शर्तों की चर्चा करते हुए प्रो० चट्टोपाध्याय ने कहा कि अतिरिक्त कताई क्षमता के लिए यह अनिवार्य होगा कि धागे का कम से कम 65 प्रतिशत लच्छियों के रूप में हो।

बन्दरगाहों के लिए धन

केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के अन्तर्गत छोटी बन्दरगाहों के विकास के लिए 110 लाख रुपए की व्यवस्था की गई है। विभिन्न राज्यों में कुल 6 छोटी बन्दरगाहें हैं।

गुजरात में पोरबन्दर के लिए पहले दिए गए 203.37 लाख रुपयों के अलावा 42 लाख रुपए और दिए जाएंगे। आन्ध्र-प्रदेश में काकीनाड़ा और केरल में वायपुर के लिए (प्रत्येक को) 16 लाख रुपए और मिलेंगे। उड़ीसा में गोपालपुर, कर्नाटक में करवार और महाराष्ट्र में मीरियावे के लिए 12 लाख रुपए (प्रत्येक को) दिए जाएंगे।

ये राशियां जहाज के लंगर डालने की जगह को गहरा बनाने, घाट बनाने और सड़क और रेल सम्पर्क जैसी सहायक सुविधाओं की व्यवस्था करने के लिए खर्च की जाएंगी।

योग अनुसन्धान

पांचवी योजना के दौरान योग के लिए एक केन्द्रीय अनुसन्धान संस्थान की स्थापना की जाएगी। योजना के विकास के लिए 26 लाख रुपए की व्यवस्था की गई है, जिसमें से 7 लाख रुपए 6 योग अनुसन्धान परियोजनाओं को चलाने के लिए 1974-75 में खर्च किए जाएंगे।

स्वास्थ्य और परिवार नियोजन मन्त्री डा० कर्ण सिंह ने कहा कि इस वर्ष "योग और विज्ञान" पर एक गोष्ठी आयोजित की जाएगी। उन्होंने कहा कि भारतीय चिकित्सा की अन्य प्रणालियों से अलग योग के लिए एक मण्डल की स्थापना का भी उनका विचार है।

कृषि औजार

विकासशील देशों के लिए इस वर्ष 21 अक्टूबर से यहां एक कृषि मशीनरी निर्माण विकास क्लिनिक शुरू की जाएगी। 10 दिन की इस क्लिनिक का आयोजन संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन ने किया है।

इस क्लिनिक का उद्देश्य अपेक्षतया कम विकसित देशों को कृषि औजारों के विकास और निर्माण के बारे में तकनीकी जानकारी देने में सहायता करना है।

नए किस्म का चारा

रिमाउन्ट और वेटरिनरी कोर के मेजर पी०के० शर्मा ने वैज्ञानिक आधार पर अनुसन्धान कर पशुओं का कम खर्चीला चारा तैयार किया है। उनके अनुसार पशुओं को इस प्रकार तैयार किया गया कम प्रोटीन वाला चारा खिलाने पर उनके स्वास्थ्य को कोई हानि नहीं पहुंचेगी। अधिक प्रोटीनयुक्त चारा खिलाने से यह आवश्यक नहीं कि पशुओं के स्वास्थ्य में सुधार होगा ही।

गहन अध्ययन के पश्चात् मेजर शर्मा इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि प्रोटीन का केवल कुछ ही भाग पशुओं के शरीर में रह पाता है। बढ़ते हुए, दूध देने वाले तथा गर्भ धारण किए हुए पशुओं की अपेक्षा काम में लाए जाने वाले पशुओं को कम प्रोटीन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार का चारा तैयार करने से प्रति पशु 50 पैसे से एक रुपए की बचत होती है। □

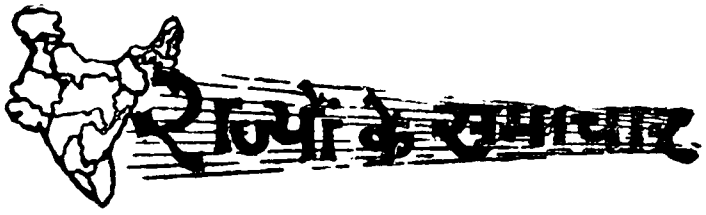

उत्तर प्रदेश

ग्रामसभा का नलकूप

बाराबंकी जिले के चौकी खण्ड के अन्तर्गत बदेल गांव की ग्राम सभा ने नलकूप की खुदाई करके एक बहुत अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है। इससे गांव वालों की सिंचाई सम्बन्धी बहुत पुरानी आवश्यकता पूरी हो जाएगी।

राज्य सरकार द्वारा पहले दिए गए नलकूप से सिंचाई मुश्किल से पूरी पड़ती थी। परिणामस्वरूप प्रायः फसल अच्छी नहीं होती थी। अन्ततः ग्राम सभा ने गांव वालों की सहायता से एक नलकूप लगाने का फैसला किया। उन्होंने ग्रामीणों द्वारा दिए गए स्वैच्छिक चन्दे और राज्य सरकार द्वारा दी गई सहायता राशि से नलकूप खोदने में सफलता प्राप्त की। गांव के छोटे किसानों के लिए खास तौर से यह एक वरदान साबित हुआ है। ग्राम सभा ने एक और नलकूप लगाने का भी फैसला किया है, क्योंकि धीरे-धीरे बहुत सारी जमीन में खेती शुरू होने से सिंचाई की जरूरत बढ़ती जा रही है।

उर्वरक कारखाना

लगभग 144 करोड़ 50 लाख रुपए की अनुमानित लागत से फूलपुर (इलाहाबाद) में देश का सबसे बड़ा उर्वरक कारखाना सहकारी क्षेत्र में बनाया जा रहा है। आशा की जाती है कि इस कारखाने में 1977 तक उत्पादन कार्य प्रारम्भ हो जाएगा। इसके फलस्वरूप प्रतिवर्ष 5 लाख टन यूरिया का उत्पादन हो सकेगा।

भारतीय कृषक उर्वरक निगम, जो राष्ट्रीय स्तर पर सहकारिता के आधार पर बनाया गया है, इस पूरी परियोजना का संचालन करेगा। इस परियोजना में दस राज्यों की 9 करोड़ 91 लाख रुपए की हिस्सा-पूंजी लगी है। ये दस राज्य पंजाब, हरियाणा, कर्नाटक, तामिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश हैं। सोसाइटी के पास 100 करोड़ रुपए की अधिकृत पूंजी है। इसे कृषि मन्त्रालय के सहकारिता विभाग का सक्रिय अनुमोदन एवं सहयोग प्राप्त है।

भारतीय कृषक उर्वरक निगम पांचवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में कांडला में स्थित अपने उर्वरक कारखाने के विस्तार की दृष्टि से एक नई इकाई स्थापित करेगा। उक्त अवधि में उर्वरक का उत्पादन 8 लाख टन से बढ़ाकर 16 लाख टन करने की योजना है। इस उद्देश्य से सदस्य राज्यों से 25 करोड़ रुपए एकत्रित करने की निगम की योजना है। इस धनराशि में उत्तर प्रदेश द्वारा 11 करोड़ रु० दिए जाने का निश्चय किया गया है। इससे उत्तर प्रदेश को कुल उत्पादन का 26 प्रतिशत के मुकाबले 34 प्रतिशत उर्वरक उपयोग के लिए प्राप्त हो सकेगा।

तमिलनाडु

लघु सुपर बाजार

कोयम्बटूर और पड़ौसी तालुकों के किसानों को औजारों, सेवाओं और खाद बीज जैसी अन्य जरूरतों के लिए एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे तक नहीं भटकना पड़ता। यह सब चीजें उन्हें कोयम्बटूर के कृषि सेवा केन्द्र से ही मिल जाती हैं।

यह केन्द्र अमोनियम सल्फेट, डाइअमोनियम सल्फेट, सुपरफास्फेट जैसे उर्वरक, दानेदार उर्वरक और पोटाश उर्वरक बेचता है। किसानों को सभी तरह की कीटनाशक दवाइयां भी दी जाती हैं। इस मामले में कीड़े और फुंगी का विनाश करने वाली दवाइयों के निर्माता कृषि सेवा केन्द्र के साथ सहयोग करते हैं।

केन्द्र छिड़काव करने वाले उपकरण देता है। मेकेनिकों की सेवाएं भी किसानों को उपलब्ध कराई जाती हैं। वे केन्द्र से उपकरण प्राप्त कर सकते हैं और अपनी खेती की मशीनों की मरम्मत वर्कशाप में करा सकते हैं। केन्द्र के तकनीकी कर्मचारी किसानों को तकनीकी सेवाएं और सलाह भी प्रदान करते हैं।

स्थानीय बीज निगम और कृषि विभाग के सहयोग से यह केन्द्र विभिन्न फसलों के सुधरे हुए और संकर बीज सप्लाई करता है। केन्द्र के साथ एक विशेष पौधशाला भी सम्बद्ध है जहां फूलों के पौधों, फल वाले पेड़ों आदि की पौध भी तैयार की जाती है।

केन्द्र द्वारा दी जा रही सबसे महत्वपूर्ण सेवा है उन सभी प्रकार की खेती की मशीनों के फालतू पुर्जों की सप्लाई, जो बाजार में कम उपलब्ध है। सिंचाई के लिए बिजली की मोटरों, पम्पिंग सेट और डीजल इन्जिन भी सप्लाई किए जाते हैं। बिजली की ड्रिलें बनाने वाले अनेक निर्माता ट्यूब वैल की खुदाई आदि में किसानों की सहायता करने के लिए केन्द्र के साथ सहयोग करते हैं।

यह सेवा केन्द्र सहकारी समितियों, भूमि विकास और

वाणिज्यिक बैंकों जैसी संस्थाओं से ऋण लेने में भी सहायता करता है।

पश्चिम बंगाल

कूड़े कर्कट से खाद

पश्चिम बंगाल का कृषि उद्योग निगम किसानों को साफ कम्पोस्ट खाद देता है, जो कलकत्ता निगम के कदापाड़ा मैदान में दबाई जाती हैं। पिछले अनेक वर्षों में दबाए गए कूड़े कर्कट से तैयार लगभग दो लाख टन कम्पोस्ट खाद इस वक्त कदापाड़ा मैदान में पड़ी हुई है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि एक टन कम्पोस्ट खाद में नाइट्रोजन फास्फेट और अन्य पोषक पदार्थों की 75 रु० मूल्य की मात्रा होती है जबकि ढुलाई के भाड़े को छोड़कर निगम केवल 15 रु० ही लेता है।

मध्य प्रदेश

उद्‌वहन सिंचाई योजना

राज्य सरकार ने 1973-74 में राज्य के आदिवासी विकास खण्डों में उद्‌वहन सिंचाई योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए 46 लाख रु० स्वीकृत किए हैं। राज्य के पिछड़े जिलों में विद्युत् व्यवस्था के लिए 55 करोड़ रु० का प्रावधान रखा गया है।

राजस्थान

माही सागर परियोजना

बांसवाड़ा जिले की इकत्तीस करोड़ छत्तीस लाख रु० की लागत की माही सागर परियोजना का कार्य प्रगति पर है।

इस परियोजना को 1979 तक पूरा करने का लक्ष्य है। तब तक आंशिक रूप से पानी रोक लिया जाएगा एवं 1981 तक पूर्णरूप से पानी भरा जा सकेगा।

गत वर्ष परियोजना पर मशीनरी सहित 3.10 करोड़ रु० के निर्माण कार्य पूरे कराए गए हैं और मुख्य बांध को पांचवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान पूरा करने के लिए 8.50 करोड़ रु० के निर्माण कार्यों पर कार्यवाही प्रारम्भ हो गई है। मिट्टी का बांध विभागीय स्तर पर पूरा कराया जाएगा।

इस परियोजना में राजस्थान एवं गुजरात सरकारों का व्यय आदि के लिए 45:55 का अनुपात है। इस वर्ष के लिए इसके लिए दोनों सरकारों ने 3.30 करोड़ रु० की राशि स्वीकार की है एवं 70 लाख रु० की राशि और मिलने की आशा है। इस राशि से एक करोड़ रु० मुख्य बांध पर, एक करोड़ रु० मिट्टी के बांध पर तथा शेष राशि परियोजना के विभिन्न कार्यों एवं प्रशासन आदि पर व्यय की जाएगी।

परियोजना की नहरों की खुदाई एवं निर्माण पर भी दस करोड़ रु० व्यय होगा। यह सम्पूर्ण व्यय राजस्थान सरकार वहन करेगी।

इस परियोजना के अन्तर्गत विद्युत्-उत्पादन के लिए सर्वेक्षण किया जा रहा है। अन्तिम रिपोर्ट आगामी दिसम्बर मास तक योजना आयोग के समक्ष प्रस्तुत कर दी जाएगी। इस समय सस्ते और अधिक विद्युत् उत्पादन के विकल्पों का अध्ययन किया जा रहा है। हाइडेल चेनल इरीगेशन कार्यक्रम के अन्तर्गत परियोजना में प्रस्तावित की जाने वाली सिंचित भूमि 1.15 लाख एकड़ से बढ़कर 2 लाख एकड़ हो जाएगी।

बैंक द्वारा ऋण

बाडमेर केन्द्रीय सहकारी बैंक द्वारा गत तीन माह की अवधि में जिले के काश्तकारों को खरीफ की फसल के लिए कुल 46,33,000 रुपए के ऋण वितरित किए गए हैं।

वितरित किए गए ऋणों से जिले के 320 ग्रामों के 15,986 कृषक लाभान्वित हुए हैं। ऋणों की पूरी राशि सहकारी समितियों के माध्यम से वितरित की गई है।

ऋणों की सर्वाधिक राशि 39.3 लाख रुपये गत जून में वितरित की गई। इसी प्रकार सर्वाधिक 15,22,100 रुपए के ऋण जिले की पोरी मन्ना पंचायत समिति के काश्तकारों को वितरित किए गए हैं।

हरियाणा

उन्नत बीजों का वितरण

जिला महेन्द्रगढ़ में कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए किसानों को उन्नत किस्म के बीज उपलब्ध कराने का प्रबन्ध किया गया है। जिले में संकर बाजरा नं० 3 के 400 क्विंटल, मूंगफली पंजाब नं० 1 के 100 क्विंटल, ज्वार एफ.एस. 277 के 100 क्विंटल उन्नत बीज वितरित किए गए। इसके अतिरिक्त, 3,000 हैक्टयर क्षेत्र दालों के अधीन है।

सिंचाई योजनाएं

राज्य के सिंचाई एव बिजली मन्त्री श्री बनारसी दास गुप्त ने पिछले दिनों हरियाणा विधान सभा में एक प्रश्न के उत्तर में बताया कि इस समय हरियाणा में नहरों में पानी की वृद्धि करने के लिए कई आवर्धन नलकूप योजनाएं विचाराधीन हैं। योजनाओं का विवरण देते हुए मन्त्री महोदय ने सूचना दी कि गुड़गांव नहर के साथ-साथ 160 क्यूसैक्स जल की क्षमता के 100 आवर्धन नलकूल, हांसी शाखा के साथ-साथ 260 क्यूसैक्स क्षमता के 150 नलकूप, सिरसा शाखा के साथ-साथ 90 क्यूसैक्स क्षमता के 50 नलकूप तथा किशनगढ़ लिंक चैनल के साथ-साथ 30 क्यूसैक्स क्षमता के 25 नलकूप लगाने की योजना है। सिंचाई एवं बिजली मन्त्री ने यह भी बताया कि यदि धनराशि उपलब्ध हो गई तो ये योजनाएं वित्तीय वर्ष 1974-75 के अन्त तक कार्यान्वित होने की सम्भावना है। □

कृषि के लिए बैंक ऋण

बलराज मेहता

हाल में उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार राष्ट्रीयकृत बैंकों ने मार्च 1973 के अन्त तक कृषि के लिए 13 लाख खातेदारों को 429 करोड़ रुपये के ऋण दिए हैं। इसमें से 11 लाख 50 हजार खातेदारों को लघु, मझले और दीर्घकालीन ऋणों के रूप में 270 करोड़ रुपये की प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता दी गई। उत्पादन के काम में आने वाली वस्तुओं की सप्लाई करने वाले व्यक्तियों और एजेन्सियों को 160 करोड़ रुपये अप्रत्यक्ष ऋणों के रूप में प्राप्त होंगे। इस सिलसिले में लगभग 1 लाख 25 हजार खातेदार लाभान्वित होंगे।

कृषि को सहायता

बड़े वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकों द्वारा ऋण सुविधा का विस्तार एक महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय उपलब्धि है। यदि इन बैंकों का राष्ट्रीयकरण न किया गया होता तो यह सब कुछ सम्भव न होता। अराष्ट्रीयकृत बैंकों के मालिक शहरी उद्योगों और व्यापारियों के साथ निकट और प्रत्यक्ष सम्पर्क रखते हुए कृषि क्षेत्र में बैंक सुविधाएं उपलब्ध कराने पर अधिक ध्यान नहीं देते। उनकी शहरों में ही कारोबार सीमित रखने की प्रवृत्ति से कृषि के विकास में बाधा पड़ी है। कृषि क्षेत्र नए रूप में उभर रहा है और बिक्री तथा मूल्य आदि के प्रति काफी जागरूक हो गया है।

राष्ट्रीयकृत बैंकों ने इस क्षेत्र में प्रभावशाली प्रगति की है। कृषि क्षेत्र में प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता की सुविधा प्राप्त करने वाले खातेदारों की संख्या डेढ़ लाख से बढ़कर 11 लाख हो गई है। इस प्रकार 4 वर्षों में खातेदारों की संख्या में 7 गुनी वृद्धि हुई है।

कृषि के विकास में प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता देने के काम को तीन भागों में बांटा जाएगा। इस सिलसिले में उत्पादन के लिए अल्पकालीन ऋण दिया जाएगा, फसल ऋण तथा पूंजी लगाने के लिए मध्यकालीन और दीर्घकालीन ऋण शामिल हैं। ये ऋण क्रमशः 77 करोड़ रुपये तथा 160 करोड़ रुपए के होंगे। ये ऋण कुएं खोदने या उनको गहरा करने, ट्यूब वैल, पम्प, सेट लगाने और अन्य छोटी सिंचाई योजनाओं को कार्यरूप देने में इस्तेमाल करने के लिए दिए जाते हैं। इन उपायों से कृषि को दैवी प्रकोपों के विरुद्ध संरक्षण प्राप्त होता है। 30 करोड़ रुपये मत्स्यपालन आदि जैसे सम्बन्धित कार्यों के लिए दिए गए हैं।

अप्रत्यक्ष वित्तीय ऋणों के अन्तर्गत उर्वरक तथा अन्य वस्तुओं के वितरण और बिजली मण्डलों आदि को दिए जाने वाले ऋण शामिल हैं। किसानों को प्राथमिक ऋण सोसाइटियों से भी ऋण देने की सुविधाएं प्राप्त हैं। लेकिन ये सोसाइटियां अधिक ऋण नहीं देतीं। इन्होंने अब तक 11 करोड़ रुपये ऋण के रूप में दिए। रिजर्व बैंक इस योजना के और अधिक विस्तार पर विचार कर रहा है।

बैंक ऋण सुविधाएं उन किसानों को दी जाती हैं जो वाणिज्यिक बैंकों से ऋण सुविधाओं का लाभ उठा सकने की स्थिति में हैं तथा जो अपनी बढ़ी हुई आय में ऋणों की अदायगी करने में समर्थ हों। कृषि के विकास के लिए दी जाने वाली वित्तीय सहायता की वर्तमान प्रणाली से इस बात की पुष्टि होती है। 270 करोड़ रुपये की प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता में से छोटे किसानों को उत्पादन के लिए केवल अल्पकालीन ऋण की सुविधा प्राप्त हो सकती है। यह ऋण सुविधा 77 करोड़ रुपये की है। जिन किसानों के पास पांच एकड़ भूमि है उन्हें 35 करोड़ 50 लाख रुपये का ऋण प्राप्त हुआ। 43 करोड़ रु० के शेष ऋण बड़े किसानों को दिए गए हैं। इनमें 160 करोड़ रु० के मध्यम और दीर्घकालीन ऋण शामिल हैं।

राष्ट्रीयकरण के बाद वाणिज्यिक बैंक की ऋण सुविधाएं मुख्यतया समृद्ध किसानों के लिए हैं, जिन पर अनाज के लिए निर्भर किया जा सकता है। इसका मतलब यह नहीं कि हम बैंकों की आलोचना करते हैं। ऐसे मामलों में कृषि के क्षेत्र में वर्तमान सामाजिक और सम्पत्ति सम्बन्ध अपना मापदण्ड और कसौटियां स्वयं तय करते हैं। इस सिलसिले में बैंकों के पास कोई चारा नहीं है और न ही उनसे इससे अधिक आशा की जा सकती है। वे उन्हीं किसानों को सहायता देते हैं जो आवश्यकता से अधिक अनाज का उत्पादन करके बिक्री के लिए देते हैं।

नई कृषि नीति

नई कृषि नीति के अन्तर्गत प्रोत्साहन मूल्य निर्धारण के अलावा किसानों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए जो अन्य सुविधाएं दी जाती है उनमें ऋण सम्बन्धी सुविधा भी शामिल है। इस नीति में यही एक खराबी है कि इससे परिणाम आशा के अनुकूल नहीं रहे। इसमें एक अन्य कठिनाई यह है कि जो भी फालतू गेहूं का लक्ष्य प्राप्त किया गया है उससे कृषि के उत्पादों के मूल्यों में कोई कमी नहीं हुई। कृषि के क्षेत्र में स्थायी प्रगति के लिए भारतीय कृषि के सामाजिक आधार के आधुनिकीकरण के लिए और अधिक प्रयत्न किए जाने चाहिए। □

अहरी गांव : एक सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण

* शशि प्रभा चावला

शहर के घुटन भरे जीवन से ऊबकर हम शान्ति की तलाश में भटकने को लालायित रहते हैं। ऐसी शान्ति जहां न वाहनों की भीड़-भाड़ हो और न ही ध्वनियन्त्रों का शोरगुल। गांव का कोई छोर, जंगल का कोई प्रान्तर और पहाड़ की किसी घाटी में खो जाने को मन करता है बार-बार। और यह तमन्ना पूरी हुई एक दिन।

'इन्स्टीच्यूट आफ जर्नलिजम' दिल्ली की ओर से हम लोगों को एक गांव के सर्वेक्षण का कार्य सौंपा गया। मैं अपने कुछ पत्रकार मित्रों के साथ 'अहरी गांव' पहुंची। यह गांव हरियाणा प्रदेश के रोहतक जिले में पड़ता है।

लोग कड़ी धूप में काम कर रहे थे। कृषक वधुएं सर पर दोपहरी का भोजन लिए जा रही थीं। बच्चे अपने पिता के काम में हाथ बंटा रहे थे। कितना अच्छा दृश्य था यह सब! भोला-भाला किसान और उसका सीधा सादा परिवार।

सबसे पहले हम चोधरी मनोहर जी से मिले, जो वहां के जमींदार है। गांव के लोग हमें देखकर इकट्ठे हो गए। यहां की स्त्रियां रूढ़ियों में पली है। जब मैं उनके पास गई तो उन्होंने समझा कि मैं परिवार नियोजन की ओर से आई हूं। एक सुघड़ महिला बोली, "तह सूंआ लाणे आईसे के"। मैंने कहा, "अखबार के दफ्तर से आई हूं।" तैने कोई दिक्कत हैं, मैणें बतायेसूं।" उसकी गोद में छोटा बच्चा था, जिसका पेट भारी था। शायद दर्द हो रहा होगा। मैंने कहा—'थोड़ा सा तेल इसके पेट पर मल दो। और इसे खाने को दही देना, खाना नहीं।' बस इतनी सी बात थी, कि वह बार-बार नमस्कार करने लगी।

चौधरी जी ने हमारा आदर सत्कार किया था। हमारे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया, "हमें कई बार समय पर बीज और खाद न मिलने की वजह से काफी दिक्कत उठानी पड़ती है। हमारे गांव में पानी की भी उचित व्यवस्था नहीं है। यहां पर 13 साल से नहर बनी हुई है। परन्तु उसमें पानी प्रायः नहीं आता। अगर भूल से कभी आ जाए तो लोग शायद उसे लेना नहीं चाहेंगे।' एक विचित्र विडम्बना थी यह भी।

चौधरी रिसाल सिंह से हमारी मुलाकात हुई। वह गांव की ब्लाक समिति के सदस्य हैं। उनको हम अभी अपना पूरी तरह परिचय भी नहीं दे पाए थे कि वे स्वयं बोले—'हमारे यहां शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं है। हम अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाना चाहते हैं। यहां पर सिर्फ एक स्कूल है। वह भी प्राईमरी तक जबकि गांव की जनसंख्या 2,500 से अधिक है। लड़के लड़कियों का एक ही स्कूल है। उसमें 350 के लगभग बच्चे हैं। उन पर सिर्फ 5 अध्यापक हैं, जबकि शहर के स्कूलों में 80 बच्चों के लिए 5 अध्यापक होते हैं। हमने इस स्कूल का निर्माण स्वयं किया है। हम चाहते हैं कि यहां मिडिल तथा हाई स्कूल शीघ्र ही बने।'

चौधरी रिसाल सिंह व मनोहर सिंह का कहना है कि उनका गांव इतना खुशहाल है कि थोड़ी सी उचित व्यवस्था होने पर काफी मात्रा में पैदावार हो सकती है। गांव में न कोई अस्पताल है, न ही कोई छोटी-मोटी डिस्पैंसरी। सारे गांव में एक परिचारिका है जो यथा सम्भव देखभाल करती है किन्तु उसकी भी तो अपनी सीमा है। वह अकेली क्या कर सकती है। बीमार व्यक्ति को 7-8 मील दूर शहर ले जाया जाता है।

हम भूतपूर्व प्रधान जी से मिलने गए तो देखा, उनके यहां एक अच्छी-खासी महफिल जमी हुई है। वे खुद तो हुक्का गुड़गड़ा रहे थे। उनके अन्य साथी ताश खेल रहे थे। पहले तो उन्होंने हमारी ओर ध्यान ही नहीं दिया। फिर बाद में बोले, 'वैसे तो सरकार बहुत कुछ कर रही है, फिर भी यदि हमारी ओर ध्यान दिया जाए तो हम अधिक पैदावार कर सकते हैं।' उन्होंने बताया कि 'वैसे फसलें वरबाद हो गई थीं। बीज, खाद, पानी व बिजली का कोई प्रबन्ध नहीं था। अतः यदि इनकी व्यवस्था सुचारू रूप से हो जाए तो हम राष्ट्रीय प्रगति में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।"

गांव के एक 24 वर्षीय नवयुवक घासीराम से परिचय हुआ। उन्होंने चार वर्ष पूर्व बी०ए० पास किया था और वे खेती-बाड़ी करते हैं। नौकरी की तलाश में हैं, पर मिलती नहीं। कुछ बहनों ने बताया, "बच्चों के लिए कोई खेल का मैदान व अन्य मनोरंजन के साधन उपलब्ध नहीं है। पहले कभी-कभी गांव में फिल्म वाली मोटर आती थी, आजकल पेट्रोल की कमी से वह भी आनी बन्द हो गई।"

हरिजनों के बारे में जब पूछा गया कि उन्होंने कहां तक प्रगति की है तो गांव वाले बोले—"अब तो वे लोग सवर्णों के कुओं से पानी भर लेते हैं। परन्तु उनमें भी संगठन नहीं है। आज-कल अन्य सब लोग उन्हें हेय दृष्टि से नहीं देखते, बल्कि बड़ा आदर करते हैं।"

हम ज्यों-ज्यों मौनता ग्रहण कर रहे थे, गांव के लोगों के विचार उतने ही खुलकर सामने आ रहे थे। वास्तव में इस सर्वेक्षण के दौरान हमने देखा कि प्रायः सभी गांव वालों की एक-सी समस्याएं हैं। किन्तु मुख्य रूप से उन्हें बीज, खाद और पानी न मिलने की शिकायत रहती है या शिक्षा-चिकित्सा एवं मनोरंजन के साधनों का अभाव बना रहता है।

हमारी राज्य सरकारें इस दिशा में अब पर्याप्त ध्यान दे रही हैं तथा ग्रामीण लोग भी अपने कर्त्तव्य और अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। यह निःसन्देह हर्ष का विषय है। गांधी के सपनों का भारत साकार रूप लेता आ रहा है और वह दिन दूर नहीं जबकि गांव का जीवन स्वर्ग से कुछ कम नहीं लगेगा।

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1
द्वारा प्रकाशित तथा केसर क्यारी इलैक्ट्रिक प्रेस, लाइब्रेरी रोड, दिल्ली-6 द्वारा मुद्रित।

आवरण II का शेषांश]

वास्तव में भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का जो सन्तुलन टूटा वह आज तक कायम नहीं हो सका।

आज से 65 साल पहले गांधीजी ने भारत में गरीबी का नग्न तण्डव नृत्य देखा था। उन्होंने यह समझ लिया था कि अहिंसक ढंग से स्वराज्य तब तक नहीं सम्भव है जब तक गरीबी के हल का कोई रचनात्मक उपाय नहीं ढूंढ लिया जाता। 1908 में अचानक उन्हें यह ज्ञान हुआ कि भारत की गरीबी का एकमात्र इलाज चरखा ही है। इसके 12 वर्ष बाद उन्होंने खादी की आवाज उठाई। उनके विचार में खादी धारण करने का अर्थ सादा जीवन और उच्च विचार पर कायम रहना है। इससे एक ऐसे समाज का विकास होगा जिसमें शोषण, असमानता और अन्याय के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा। साथ ही, शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा होगी और इस मान्यता को बल मिलेगा कि मनुष्य को गाढ़े पसीने की कमाई खानी चाहिए। यद्यपि उनकी इस विचारधारा की खिल्ली कुछ पश्चिमी अर्थशास्त्रियों ने उड़ाई थी परन्तु गांधीजी ने उनकी आलोचना के उत्तर में स्पष्ट रूप से कहा था—'भारत के करोड़ों ग्रामीणों की गरीबी का एकमात्र हल खादी है और यह तब तक रहेगा जब तक प्रत्येक गांव में 16 वर्ष से अधिक उम्र के प्रत्येक व्यक्ति के लिए खेत में, घर में या कारखाने में काम न मिलने लगे और अच्छा वेतन न मिलने लगे जोकि अच्छे जीवन के लिए जरूरी है और मिलना चाहिए। जब कोई हाथ से सूत कातने की बात कहता है तो कुछ लोग मजाक उड़ाते हैं और अधीरता एवं घृणा प्रदर्शित करते हैं। जब आप इस पर विचार करेंगे कि खादी में भारतव्यापी आलस्य, बेकारी, और गरीबी दूर करने की क्षमता है तो यह उपहास की वस्तु नहीं रहती। बहुत से लोग मेरी उक्ति को नहीं मानेंगे। परन्तु मुझे विश्वास है कि एक दिन आएगा—हो सकता है वह दिन मेरी मृत्यु के बाद

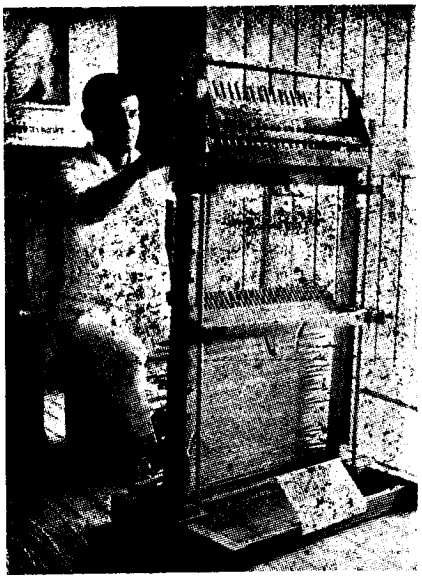

आए जब लोग कहेंगे कि अन्त में जो गांधी कहता था, वह ठीक था।'

आज दो दशक से अधिक समय के नियोजित विकास में लगाए गए खरब रुपयों की योजनाओं की उपलब्धि हमारे सामने है। नियोजित विकास के दौरान जहां अर्थव्यवस्था को ठोस गति मिलनी थी वहां राष्ट्रीय अर्थतन्त्र की हालत टी० बी० के मरीज जैसी है। 20 वर्षों के नियोजित विकास के प्रयत्नों के दौरान योजनाओं ने धनी को और धनी तथा गरीब को और गरीब बनाया है। बेरोजगारी, अभाव, अकुशल उत्पादन की प्रवृत्तियां अर्थव्यवस्था को जीर्ण शीर्ण किए जा रही है। निस्सन्देह हमारी उद्योगों का अपना स्थान है, परन्तु भारत जैसे देश में ग्रामोद्योगों का भी अपना एक पृथक स्थान है। इनकी उपेक्षा करके देश की अर्थव्यवस्था प्राणवान नहीं बनाई जा सकती। हमारी योजनाओं की सबसे बड़ी खामी यह रही कि हमने संयोजन का गांधीवादी सिद्धान्त बिलकुल भुला दिया। यही नहीं, खादी जैसे कार्यक्रम के लिए कुछ करोड़ रुपए अवश्य खर्च किए गए पर उनके उत्पादन व उपभोग का क्षेत्र पृथक न होने के कारण अर्थव्यवस्था की कसौटी पर घाटे का सौदा सिद्ध हुए जिससे खादी कार्यक्रम की आवश्यक रूप में आलोचना हुई। यद्यपि खादी कार्यक्रम के कार्यान्वयन में काफी विसंगतियां भी उजागर हुई। प्रशासनिक व्यवस्था चुस्त न होने और सर्वजनिक वित्त का दुरुपयोग होने की भी सशक्त शिकायतें मिलीं किन्तु इसके कारण समूचे खादी कार्यक्रम को गलत बता दिया जाए और खादी के वस्त्र को बदनाम किया जाए यह बात तर्कसंगत नहीं।

वर्तमान सन्दर्भ में जब लोग बड़े बड़े उद्योगों, जटिल तकनीकों की चर्चा में लीन हैं तो खादी जैसे कार्यक्रम जिसकी उत्पादन प्रवृत्ति का ही लोगों का पता नहीं, वे उसके दर्शन को भला क्या समझेंगे? आजादी के बाद खादी के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रगति हुई है। अब पारम्परिक खादी, पुराने अम्बर से और सर्वधातु अम्बर से कते खादी के तीन रूप देखते हैं। रोजगार और व्यवस्था की दृष्टि से प्रायः 1.32 लाख लोगों को पूर्णकालिक रोजगार और 9.73 लाख लोगों को आंशिक रोजगार मिला है। 1971-72 में 28 करोड़ रुपए के मूल्य की खादी की उत्पादन हुआ है। किन्तु इसके पूर्ण विकास के लिए पृथक क्षेत्र सुरक्षित करने या सामान्य उत्पादन कार्यक्रम के रूप में लिया जाना जरूरी है इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि आज भी हमारे देश में करोड़ों लोगों को दो जून का भोजन मयस्सर नहीं है फिर भी जो लोग इन लाखों करोड़ों के लिए कोई रोजगार का कार्यक्रम नहीं सुझाते तब तक खादी के कार्यक्रम का मजाक उड़ाना देश की गरीबी का मजाक उड़ाना है। मोटे तौर पर खादी कार्यक्रम को प्रगतिशील बनाना जरूरी है। समय और परिस्थितियों के अनुसार टैक्नालाजी अपनाना किसी भी उद्योग की सबसे बड़ी गति होती है। खादी को भी किसी विशेष विचार से बन्धे रहने के बजाए भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रवाह में गतिशील बनाना जरूरी है, तभी वह कायम रह पाएगी।

डी-69 श्रीराम नगर
कोटा-324004